प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (बम्बई-राज्य)

पहली बार : २,०००
फरवरी, १९५९
मूल्य : पचहत्तर नये पैसे
(बारह आना)

मुद्रक :
विश्वनाथ भार्गव,
मनोहर प्रेस,
जतनबर, वाराणसी

प्रस्तावना

हिमालय का मन में बड़ा आकर्षण रहा है। अपने परम मित्र गंगाबाबू (श्री गंगाशरण सिंह, एम० पी०, अध्यक्ष, प्रजा-समाजवादी पार्टी) से उनकी यात्राओं का वर्णन अक्सर सुन चुका था जिससे हिमालय दर्शन की उत्सुकता तीव्रतर बनी थी। हिमालय-साहित्य भी कुछ देखा था। इसलिए गढ़वाल जिले की भूदान-समिति के संयोजक, श्री मानसिंह रावत ने जब अपने जिले की भूदान-यात्रा के लिए मुझे आमंत्रित किया, तो बड़ी खुशी से मैंने उसे स्वीकार कर लिया। इस यात्रा के सिलसिले में श्री बदरीनाथजी तथा श्री केदारनाथजी जाने का सौभाग्य मिलेगा, यह जानकर हमारी छोटी बहन, गया के मेरे मित्र भूपबाबू (श्री बनविहारीप्रसाद 'भूप') की धर्मपत्नी, श्यामा बहन, पटना के डॉ० शिवकुमार सिनहा की माता, दीदीजी, लखीसराय के हमारे मित्र श्री हनुमानप्रसाद खेतान की पुत्री, सुलोचना, यह सभी बहनें भी साथ हो गयीं। प्रभावती तो साथ थी हीं। डॉ० ओमप्रकाश और द्वारको सुन्दरानी भी मेरे साथ थे।

हिमालय को देखने पर ही उसका अनुपम सौंदर्य ध्यान में आता है। न जाने वहाँ कौनसी मोहिनी है कि वहाँ से लौटने का जी नहीं चाहता।

एक महीना हम लोग हिमालय की गोद में रहे थे। हर दिन छोटे-बड़े पड़ावों पर सर्वोदयविषयक सभाएँ होतीं। गढ़वाल अत्यन्त गरीब, पिछड़ा हुआ और उपेक्षित इलाका है। परन्तु यदि उस ओर ध्यान दिया जाय, तो उसका अच्छा विकास हो सकता है।

इस यात्रा का कोई स्थायी वर्णन रहे, यह कई मित्रों की इच्छा रही; लेकिन इसका जिम्मा किसीने लिया नहीं था। इसलिए लौटने पर मैंने मान लिया था कि यह काम पड़ा ही रह जायगा। कुछ महीने बाद मुझे गया जाने का अवसर मिला। वहाँ बड़ा आश्चर्य हुआ, जब 'हिमालय की गोद में

जयप्रकाश' की हस्तलिपि हमारे हाथों में डाल दी। इधर-उधर पन्ने उलटता रहा। अपने सम्बन्ध में कुछ भी पढ़ने की रुचि नहीं होती, फिर भी यह यात्रा-वर्णन रुचिकर लगा।

श्यामा बहन की यह पुस्तिका बहुत पहले ही तैयार हो चुकी थी। इसके प्रकाशन में जो विलम्ब हुआ, उसका दोष मेरे ऊपर है। बहनजी की इच्छा थी कि मैं इसके लिए दो शब्द लिख दूँ। बस, यही दो शब्द लिखने में इतना समय लग गया।

इस पुस्तिका में गढ़वाल के मेरे कुछ भाषण भी हैं, जिन्हें ओमप्रकाशजी ने अपने नोटों से तैयार किया है।

भारतीय हृदय की यह एक आकांक्षा रही है कि हिमालय की गोद में जीवन की संध्या बीते। जैसे जीवन के दिन ढलते जाते हैं, हिमालय का आकर्षण बढ़ता जाता है।

बंबई
२३-४-'५८

—जयप्रकाश नारायण

समर्पण

उस अमरदीप को,
जो निरङ्कुश स्वार्थपरता
की
गहरी काली रात में भी
अपने निर्भीक त्यागमय प्रकाश-पुञ्ज से
हमारा मार्ग आलोकित करता रहा।
जग सोता रहा
किन्तु
वह जो एकाकी
जागता रहा, जागता ही रहा।
उस अखण्ड ज्योति को,
बिहार की उस उज्ज्वल विभूति को,
मानवता के प्रतीक
श्री लक्ष्मीबाबू
को
जो मरकर भी अमर हैं,
मिटकर भी अमिट है
मेरी यह तुच्छ भेंट !
सादर सप्रेम !

—श्यामा भूप

निवेदन

मै जब हिमालय की इस पुनीत यात्रा से लौटी, उसके दूसरे दिन श्री वल्लभस्वामी ने संध्या की प्रार्थना-सभा में मुझे यात्रा-वर्णन सुनाने के लिए कहा। किसी भी सभा में मै कभी बोली नहीं थी। वैसे सभा तो घर में ही नित्य होती थी और वहाँ घर का ही वातावरण था, किन्तु मेरे अपने मन की कठिनाई मै ही जानती थी। प्रार्थना समाप्त हुई और मेरे बोलने की बारी आयी। धीरे-धीरे हिम्मत आती गयी और एक घण्टे में श्री केदारनाथ जा पहुँची। अगले दिन सायं-प्रार्थना में भी यही क्रम रहा और यात्रा पूरी हुई। यात्रा-वर्णन सुनकर कुछ भाइयों का विचार हुआ कि यदि इसे लिख डाला जाय, तो एक स्थायी वस्तु तैयार हो जायगी। भाऊ (श्री दामोदरदास मूंदड़ा) ने भी, जो संयोग से उस समय गया आये हुए थे, इस बात पर जोर डाला। मुझे भी यह विचार अच्छा लगा और इस विषय में कोटद्वार में हुई बात भी सहसा स्मरण हो आयी। इस प्रवास के उस अन्तिम स्थल से जब मोटर चलने को थी, तब किसीने यों ही कहा था कि मैं यह यात्रा-वर्णन लिखूँ। बात विनोद में कही गयी थी, किन्तु उसे अब इस प्रकार प्रतिपादित होते देख मुझे आश्चर्य हो रहा था। मैने इसे भगवद्-प्रेरणा ही समझी।

किन्तु इसमें मेरे साथ अनेक कठिनाइयाँ थीं। एक तो यह कि मै कोई नोट तैयार करके नहीं लायी थी। फिर भी यात्रा-वर्णन सुनाते समय मैने देखा कि एक ओर से आरम्भ करके जैसे-

जैसे मैं आगे बढ़ती गयी, घटना-क्रम अनायास ही स्मरण आते गये। यात्रा-स्थल से कतिपय पत्र घर पर लिखे थे। उनमें भी कुछ सञ्चित सामग्री मिल गयी। सम्भव है कि कुछ बातें छूट गयी होंगी, कुछ भूलें भी होंगी, उन सबके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

इस पुस्तक में डॉ० ओमप्रकाशजी तथा श्री द्वारको सुन्दरानी से जो मूल्यवान् सहायता मिली है, उसके लिए मैं उनका आभार मानती हूँ। अन्त में श्री जयप्रकाशजी के गढ़वाल के कुछ भाषण संकलित हैं। उनमें अन्तिम दो श्री द्वारकोभाई के नोटों से तथा अन्य भाषण डॉ० ओमप्रकाशजी के नोटों से तैयार किये गये है।

इस यात्रा में जब से पैदल चलना आरम्भ हुआ, तब से प्रायः यह कार्यक्रम रहता था कि प्रातः जलपान के पश्चात् और अपराह्न में, दिन में दो बार चलते थे। पहले से कोई बृहत् आयोजन न होते हुए भी जिस गाँव में श्री जयप्रकाशजी प्रवेश करते, वहाँ के लोग घण्टों पूर्व से ही आगे आकर प्रतीक्षा करते मिलते। अतः गाँव में प्रविष्ट होते-न-होते एक अच्छा जुलूस बन जाता और पहुँचते ही सभा आरम्भ हो जाती। पुष्प-मालाओं की भरमार लग जाती और 'भूदान सफल करेंगे', 'विनोबा अमर हों', 'जयप्रकाश जिन्दाबाद' के नारे गूँज उठते। सभा के पश्चात् ही श्री भाईजी निवास-स्थान पर जा पाते। छोटी-बड़ी चट्टियों में तथा मार्ग में यहाँ-वहाँ प्रायः जन-समुदाय एकत्र होता। लोग अपनी सामाजिक तथा व्यक्तिगत कठिनाइयों की चर्चा करते। ऐसे अवसरों पर भी अक्सर सभाएँ होती चलतीं। दिन में अनेक सभाएँ होतीं और हिमालय के उस पवित्र वातावरण में सर्वोदय का मंगल मंत्र प्रतिध्वनित हो उठता।

भीषण ऋतु-विपर्यय के कारण हम लोगों को श्री बदरिकाश्रम

में आठ दिनों तक रुके रहना पड़ा था। मार्ग टूट-फूट गये थे, तार के खंभे उखड़ गये थे और इस प्रकार बाह्य जगत् से गढ़वाल का सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो गया था। श्री जयप्रकाशजी के इस प्रकार वहाँ घिर जाने से पत्रों में काफी हलचल मची थी। किन्तु वस्तुतः श्री बदरीनाथ के उस पवित्र क्षेत्र में इतने दिनों तक रुकने का यह संयोग भी परम सौभाग्य ही था। इस अवसर पर प्रकृति का जो उन्मुक्त रूप देखने को मिला, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उसकी भी एक अद्भुत शोभा है, अपनी गरिमा है।

हिमालय सबंधी कुछ चित्र इस पुस्तिका में जोड़ दिये गये है, किन्तु उसकी वह जो एक रहस्यमयी शान्ति एव मन को मोहित करनेवाली अनुपम सुषमा है, वह अनुभव करने और देखने की ही वस्तु है; वर्णन करने और लिखने की नहीं। 'गिरा अनयन नयन बिनु बाणी।' गिरा और नयन का अन्तर तो फिर भी स्वल्प ही है, किन्तु 'चक्षु' और 'कर' का अन्तर तो उसकी अपेक्षा बहुत अधिक है। अस्तु, कवि की वाणी के साथ होकर मैं तो इतना ही कहूँगी कि आँखों ने देखा, किन्तु वे लिख नहीं सकतीं और हाथों ने लिखा, किन्तु उन्होंने देखा कब, तथा उन दोनों के मध्य संदेशवाहक बने क्षुद्र मन का ही क्या भरोसा!

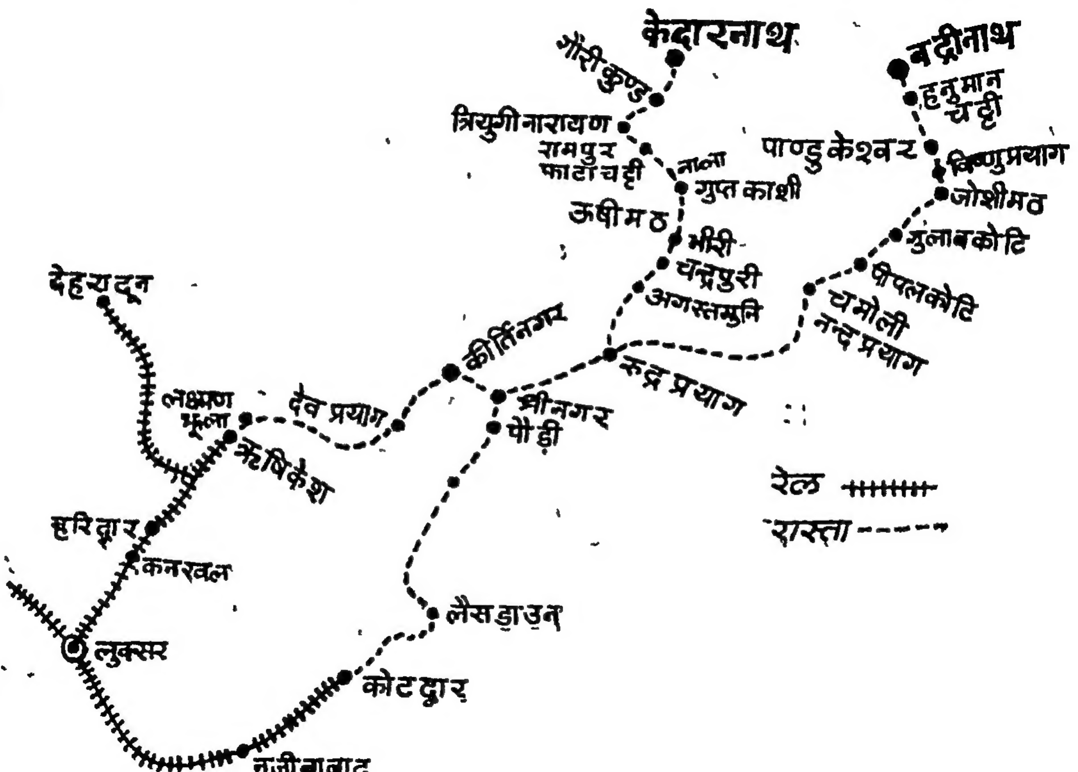
अब यह पुस्तिका प्रेस में जा रही है। इसमें इस यात्रा-चित्र की जो आड़ी-तिरछी रेखाएँ खिंची है, वे यदि किसीको अच्छी लगें, तो यह उनकी ही महानता है।

दुर्गा कोठी, गया

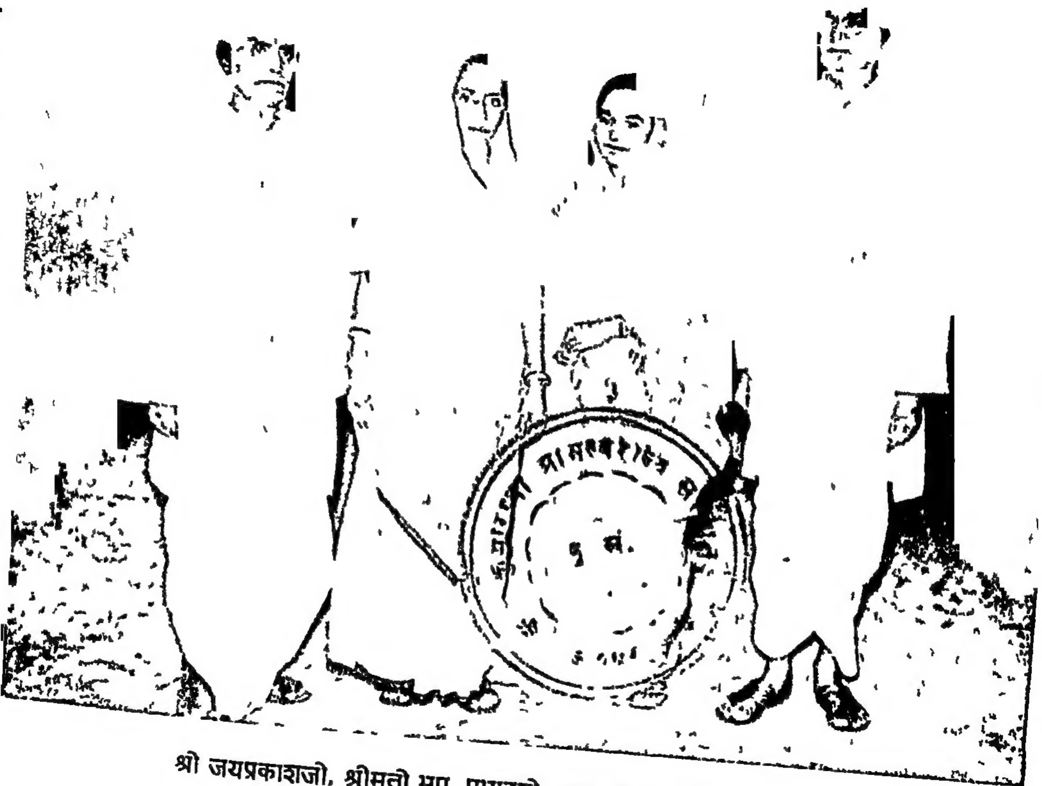
विनीत
श्यामा भूप

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, २०१५

श्री केदारनाथ-बद्रीनाथ की यात्रा का मार्ग



श्री जयप्रकाशजी के साथ लेखिका



श्री जयप्रकाशजी, श्रीमती भूप, प्रभावती बहन तथा श्री भूपबाबू

श्री बद्रीनाथ का एक दृश्य

भारत का हृदय

यदि यह कहा जाय कि भारत का शरीर गाँवों में और हृदय तीर्थों में बसता है, तो कदाचित् अतिशयोक्ति न होगी। भारतीय जन-मानस में सञ्चित चिरकालीन श्रद्धा एवं भावना का यथार्थ दर्शन इन तीर्थों में ही होता है। हमारे देश में यह जो एक अद्भुत सामासिक एकता दिखाई देती है, उसका रहस्य भी हमारे हृदयस्वरूप इन्हीं तीर्थों की पवित्रतम एवं मनोरम तपोभूमि में निहित है। क्योंकि वहाँ देश के कोने-कोने से लाखों नर-नारी एक ही कामना, एक ही आकर्षण के वशीभूत होकर पुरातन काल से एकत्रित होते आ रहे हैं। वे कहीं भी रहते हों, कुछ भी करते हों, उनका अन्तर्मन अधिक नहीं तो जीवन में कम-से-कम एक बार इन तीर्थों की पवित्र रज मस्तक पर धारण करने को आतुर रहता है। यही कारण है कि जब यात्रा की आधुनिक सुविधाएँ प्राप्त नहीं थीं, तब भी तीर्थयात्रियों का तारतम्य कभी टूटा नहीं और सहस्रों मील पैदल चलकर तीर्थों के दर्शन करने लोग सहर्ष आते रहे। इस प्रकार उपलब्ध इतिहास की दृष्टि से भी परे, काल की अनन्त शृंखला को लाँघकर अनेकानेक छोटे-बड़े उथल-पुथल के अभ्यन्तर, राजनैतिक, आर्थिक अथवा अन्य किसी भी विवशता के बन्धन से मुक्त, देश की आन्तरिक समता को अक्षुण्ण बनाये रखकर उसे अमर जीवन प्रदान करने का जो श्रेय प्रकृति के सुरम्य वातावरण में बसे हमारे तीर्थों को प्राप्त है, उसकी मिसाल संसार में अन्यत्र दुर्लभ है।

इस वृहत् देश के एक छोर से दूसरे छोर तक मणिमाल जैसे गुंफित उन अनेक तीर्थों में चार दिशाओं में अवस्थित चारों धाम की बड़ी प्रसिद्धि है। उनमें अपनी पर्वतीय भव्यता से पूर्ण हिमालय के हृदय-तल पर विराजमान श्री वदरी-केदारधाम उत्तर दिशा का मुकुटमणि है। अतः यह स्वाभाविक ही था कि जब सर्वोदय-यात्रा के प्रसंग में श्री भाईजी के उधर जाने का कार्य-क्रम बना, तो इस सुयोग का लाभ उठाने की लालसा मेरे मन में भी जाग उठी।

भाई श्री जयप्रकाशजी तो अपने त्यागमय जीवन के कारण भारत के हृदय में स्वयं ही एक तीर्थ का स्थान प्राप्त कर चुके हैं और कहा जा सकता है कि ऐसे पवित्रात्माओं की यात्रा से, उनके सान्निध्य एवं सदुपदेशों से स्वयं तीर्थ भी अधिकाधिक पावन होते चलते हैं। श्री बहनजी की महानता भी अद्वितीय है। जैसे पुण्य के साथ सत्कीर्ति, त्याग के साथ तपस्या तथा सूर्य के साथ प्रभा का सतत सम्बन्ध है, वैसे वे भी श्री भाईजी के साथ रहकर उनके छोटे-बड़े सभी कार्यों में हाथ बँटाया करती है। मेरे मन में सञ्चित तीर्थ का मोह, हिमालय का आकर्षण—उस पर से श्री भाईजी तथा श्री बहनजी की हिमालय के ही समान महान् एवं समुज्ज्वल संगति! मेरे लिए तो मानो लाभ का भाण्डार ही खुल गया था। मैंने इसे श्री वदरीविशाल की ही कृपा मानी।

सर्वोदय की बात

पूर्व निश्चित कार्यक्रमानुसार भाद्रपद शुक्ल त्रयोदशी दिनाङ्क १७ सितम्बर, १९५६ को प्रातः प्रस्थान करना था; किन्तु बिहार में भीषण बाढ़ के कारण सीधा रेलमार्ग बन्द हो जाने से गंगा

पार कर छोटी लाइन द्वारा जाना पड़ा। अतः एक दिन पूर्व ही अर्थात् भाद्रपद शुक्ल द्वादशी दिनांक १६ सितम्बर रविवार को हम लोगों की यह यात्रा सर्वोदय यात्रीदल के रूप में आरम्भ हुई।

सर्वोदय का नाम आते ही इस शब्द के पीछे जो एक जीवन-दायिनी क्रान्ति का संदेश वर्तमान है, वह साकार हो उठता है। सर्वोदय की इस अमर ज्योति का दर्शन पूज्य बापू ने अपने जीवन-काल में ही प्राप्त कर लिया था। यदि वे हमारे बीच कुछ दिन और रहते, तो देश के जीवन को सर्वोदय के आधार पर ही ढाल देते। किन्तु स्वतंत्रता दिलाकर वे तो चल ही बसे। उनके इस प्रकार अकस्मात् छिन जाने से देश में एक अन्धकार-सा छा गया था और ऐसा प्रतीत होता था, मानो उनके साथ ही वह शक्ति भी तिरोहित हो गयी, जो विश्व को नवजीवन प्रदान करने के लिए अवतरित हुई थी। देश के भीतर एक अनिश्चितता की स्थिति पलने लगी थी, जिसका मूल उस अवस्था में निहित था, जो बापू के पश्चात् उचित मार्ग-दर्शन के अभाव में पैदा हुई थी। ऐसी परिस्थिति में बाह्य शक्तियों द्वारा परोक्षतः अनुप्रेरित देश में ध्वंसात्मक क्रान्ति की प्रवृत्ति भी सबल होती जा रही थी, जिसका अधिकाधिक प्रभाव दक्षिण में तेलंगाना और पूरब में बंगाल में दिखाई देने लगा। यह देश के अहिंसक नेतृत्व को एक भारी चुनौती थी। विश्व की आँखें पड़ोसी लालचीन का दृष्टान्त सामने रखकर यह देखने को उत्सुक थीं कि स्वतंत्र भारत अपनी नव-जात समस्याओं को कैसे हल करता है और उसकी नीति अब कौन-सा रुख लेती है। देश की रक्षा के लिए एक ऐसे विधायक

कार्यक्रम का होना आवश्यक था, जो वर्ग-संघर्ष के कारणों को जड़-मूल से दूर करने में समर्थ होता।

यथार्थतः यह समस्या केवल भारत की ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व की थी। समय की माँग थी कि संसार के सामने कोई ऐसा शान्तिमय मार्ग उपस्थित हो, जिससे समाज की समस्याएँ बिना आपसी संघर्ष के दूर की जा सकें, जो बढते हुए कभी-न-कभी विश्वयुद्ध का एक बड़ा कारण बन सकता था। इसके लिए प्रेम और सहयोगी जीवन की नींव पर आधारित एक ऐसे जीवन-दर्शन की, एक ऐसे सिद्धान्त की आवश्यकता थी, जो आज तक के सभी प्रचलित सिद्धान्तों से उन्नत और पूर्ण होता और जो बुद्धि एवं व्यवहार की कसौटी पर खरा उतरता। सर्वोदय में ये सभी बातें सन्निहित थीं। किन्तु उसकी शक्ति सुपुप्त पड़ी थी। विश्व के समक्ष उसका जो चित्र था, वह अभी अस्पष्ट था—एक रेखाङ्कन जैसा, जिसे एक कुशल आँखें ही समझ सकती थीं और इसलिए उसके विषय में भूलें होने की सम्भावना भी कम नहीं थी।

ऐसे ही समय में तेलंगाना की वह स्मरणीय घटना घटित हुई और लोगों की दृष्टि सहसा उधर ही खिंच गयी। देश की आशा नये रूप से संत विनोबा के नेतृत्व में केंद्रित हो उठी। नवचेतना का एक वातावरण पुनः प्रकट हो गया और लोगों को ऐसा लगा मानो ईश्वर ने ही पूज्य बापू के पश्चात् अब इन्हें हमारे बीच में जन-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने के लिए भेज दिया हो। भूदान के रूप में सर्वोदय की शक्ति पुनः जाग उठी और जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा है, उसके नित नूतन प्रकाश में

लोकत्राण की आशा देश-देशान्तर में अधिकाधिक विश्वास का रूप धारण करती जा रही है।

तेलंगाना के पश्चात् अन्य प्रान्तों में होते हुए बाबा का बिहार में शुभागमन हुआ और वे गया पधारे। हम लोगों की भी उनसे मिलने की चिर अभिलाषा पूर्ण हुई। कुछ समय पश्चात् सर्वोदय-सम्मेलन की तैयारी हुई और उसके लिए गया को ही चुने जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसी अवसर पर भूपजी ने अपनी बकाश्त और गैरमजरूआ खास की सम्पूर्ण भूमि अर्पित कर दी, जो पाँच हजार एकड़ से कुछ अधिक थी। इसके पूर्व उन्होंने इस विषय में हम लोगों की सम्मति भी जाननी चाही। भूदान की स्तुति तो इनसे अनेक बार सुनी जा चुकी थी, अतः विरोध किसे होता? घर की कौंसिल में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पास हो गया। जमींदारी पहले ही जा चुकी थी, अब जो जमीन बची थी, वह भी समाज को अर्पित हो गयी। किन्तु इसमें जो एक अद्भुत आनन्द छिपा था, उसे तो भोक्ता ही जान सकता है। माताजी (श्री जानकीदेवी बजाज) ने जब यह सुना, जो उस समय गया में थीं और कूपदान के कार्य में संलग्न थीं, तो उन्हें कुछ चिन्ता हुई और वे बाबा से कहने लगीं कि भूप बाबू ने आपको अपनी सब जमीन दे दी, तो अब उनका क्या होगा। यह सुनकर बाबा मौन थे और भूप बाबू मुस्करा रहे थे।

यह भी एक संयोग ही था कि बिहार में बाबा का आगमन उस समय हुआ था, जब जमींदारी-उन्मूलन हुए कुछ ही समय हुआ था। उसके परिणामस्वरूप अधिकांश छोटे जमींदारों की दशा अपने ही घरों में शरणार्थियों जैसी हो रही थी।

मुआवजा मिलने की बात तो अलग रही, सरकारी मालगुजारी न चुका सकने के कारण उनके विरुद्ध वारंट जारी हो रहे थे, कुर्की हो रही थी और उनकी गयी हुई जमींदारियाँ नीलाम की जा रही थीं, जिसे सरकार स्वयं ही एक-एक रुपये में खरीद रही थी, जिससे उनके मुआवजे का अधिकार भी समाप्त हो जाता। लोगों के हृदय का क्षोभ बढ़ता जा रहा था। बाबा के सान्निध्य से ऐसे लोगों के हृदय को शान्ति मिली, उन्हें उनका दुःख सुननेवाले एक दयालु संत मिले और उन्हें फिर से एक बार यह सिद्ध कर दिखाने का अवसर मिला कि मानवता की पुकार होने पर वे किसी से पीछे रहनेवाले नहीं। जिस ढंग से जमींदारी-उन्मूलन किया गया था और उसके पश्चात् भी बिहार-सरकार जो कर रही थी, उसे किसी भी प्रकार सच्चे अर्थ में प्रजातंत्रात्मक नहीं कहा जा सकता था, इसके विपरीत वह राज्यमद का ही अधिक बोधक था। अन्ततः सरकार ने अपनी वारण्टी नीति वापस ली। बाबा के प्रभाव से अधिकांश जमींदारों के हृदय में नैराश्य की चोटी पर उगी हुई भीषण कटुता, बिना विस्फोट किये ही शान्त हो गयी और उससे स्वयं उस क्षुभित जमींदार-वर्ग को तथा सत्तारूढ़ दल को भी जो लाभ हुआ, उसे लिखने की आवश्यकता नहीं। बाबा के बिहार-आगमन का यह भी एक बड़ा परिणाम था, जिसकी ओर लोगों की उतनी दृष्टि नहीं गयी, जितनी जानी चाहिए थी। ऐसी स्थिति में भी भूदान को जो यहाँ जमींदारों का इतना सहयोग मिला, वह सर्वोदय की विधायक शान्ति एवं उसके सात्त्विक तेज का ही परिचायक है।

सर्वोदय की इसी दिव्य ज्योति का गढ़वाल भाइयों को प्रत्यक्ष

दर्शन कराने के लिए श्री भाईजी ने यह कठिन यात्रा स्वीकार की थी। दक्षिण मे पूज्य बाबा गॉव-गॉव घूमकर वह महामंत्र लोगों को सुना रहे थे और उत्तर में हिमालय के प्रागण में, देश के लाड़ले श्री जयप्रकाश नारायण उसी सदेश का अलख जगाने निकल पड़े थे।

यात्रा-आरम्भ

भादों की उमड़ी हुई गंगा को मन ही मन प्रणाम कर महेन्द्र घाट पटना से जहाज पर चढे। ठीक २ बजे दिन में जहाज खुला। साथ में श्री प्रभावतीजी, पूज्या दीदी (श्री जयप्रकाश-जी की छोटी बहन), श्री माताजी (पटना के डा० शिवकुमार सिनहा की माता), सुलोचना (लखीसराय के श्री हनुमान प्रसाद खेतान की पुत्री) तथा डा० ओमप्रकाशजी थे। बोधगया-समन्वय-आश्रम के श्री द्वारको सुन्दरानी तथा श्री माताप्रसादजी बनारस से साथ हो लिये। श्री भाईजी कार्याधिक्य के कारण साथ न जाकर दूसरी ट्रेन से सीधे लखनऊ पहुँचे और वहाँ सब लोग साथ हो गये।

बाढ के कारण जगत्पावनी जाह्नवी का दूसरा छोर दृष्टि से ओझल हो रहा था। ऐसा लगता था मानो एक समुद्र ही उमड़ पड़ा हो। अतः गर्मियों में जहाँ गंगा पार करने में जहाज को एक घण्टे से कम ही समय लगता है, वहाँ प्रायः दूना समय लगा। दूसरी ओर पहलेजाघाट से चलकर सोनपुर में गाड़ी बदली गयी। भीड़ का तो कहना ही क्या! उत्तरी बिहार की रेल-गाड़ियाँ वैसे ही दमघोंटू भीड़ के लिए प्रसिद्ध है। इस समय

तो मेन लाइन तथा ब्रैड-कार्ड लाइन बन्द रहने के कारण और यात्रियों की भी अधिकता हो गयी थी। प्रथम श्रेणी से लेकर सभी श्रेणियों की एक ही दशा थी। वस्तुतः यह ट्रेन तो एक श्रेणीविहीन ट्रेन हो रही थी।

नौ बजे रात्रि में ट्रेन छपरा स्टेशन पर खड़ी थी। हम लोगों का प्राचीन घर छपरा में होने के कारण इस नाम से मेरे मन में एक स्वाभाविक मोह है, अतः मैं उत्सुकता से छपरा आने की बाट जोह रही थी। इसी स्टेशन पर रेल-कर्मचारियों की कृपा से एक अतिरिक्त डिब्बा लगाया गया और हम लोगों को सुविधापूर्वक जगह मिल गयी। श्री बहनजी ने घर का बना सामान ले लिया था—वहीं सब लोगों ने भोजन किया। अर्द्धरात्रि में जब गाड़ी गाजीपुर पहुँची, तब ज्ञात हुआ कि उसके पास की नदी भीषण रूप धारण किये है और सम्भवतः ट्रेन आगे न जा सकेगी। किसी प्रकार चार-पाँच घण्टे पश्चात् गाड़ी चली। जब गाड़ी पुल के बीचो-बीच पहुँची, तब प्रातःकाल के धुंधले प्रकाश में पुल को छूता हुआ-सा नदी के जल का रंग और आकाश एक-जैसा परिलक्षित हो रहा था। जिधर दृष्टि जाती, उधर जल ही जल था। दृश्य कुछ ऐसा भयङ्कर था कि बस राम नाम ही लेते बनता था। इस प्रकार यह यात्रा उल्लसित उत्साह तथा भव्यता के साथ ही भीषणता की एक अद्भुत त्रिवेणी के अन्तर से आरम्भ हुई थी और आगे चलकर जो अनुभव आने थे, उन्होंने तो मानो प्रारम्भ और परिसमाप्ति को सम्पूर्णतः एक-दूसरे का पूरक ही बना डाला। विकट परिस्थितियाँ भी ईशकृपा का साक्षात्कार कराने के लिए ही आती हैं; अतः मैं कह सकती हूँ कि इस यात्रा के आदि

और अन्त में ईश्वर ने इस रूप में भी अपनी अहेतुकी कृपा का ही सम्पुट लगाया था।

१७ सितम्बर, सोमवार

अरुणोदय के स्वल्प प्रकाश में खेत, खलिहान, आहर, पोखर, गाँव—सभी को एकाकार करता हुआ, चारों ओर जल-प्रलय का-सा दृश्य दिखाई दे रहा था। बाढ़ के कारण इस ओर की जो क्षति प्रत्येक वर्ष हुआ करती है, उसका प्रत्यक्ष रूप आँखों के समक्ष था। धीरे-धीरे प्रकाश फैलता जा रहा था। दृश्य बदल चुके थे और अब हम बनारस पहुँचने ही वाले थे।

ट्रेन ४ घण्टे लेट थी, अतः साढे आठ बजे बनारस पहुँचे। स्टेशन पर पूज्य दादा धर्माधिकारी तथा श्री विमला बहन के दर्शन हुए। श्री द्वारको सुन्दरानी और माताप्रसादजी साथ चलने को आये हुए थे। अब छोटी लाइन छोड़कर बड़ी लाइन के दून एक्सप्रेस में बैठे, जो सोन में बाढ़ के कारण केवल बनारस तक ही आती-जाती थी। कुछ देर में ट्रेन खुली और श्री विश्वनाथ की वाराणसी से बिदा लेकर त्रेतायुग की पवित्र नगरी अयोध्यापुरी को प्रणाम करते हुए संध्या ६ बजे लखनऊ पहुँचे। यहाँ श्री भाईजी भी आ गये।

× × × ×

टिहरी-गढ़वाल : एक परिचय

१८ सितम्बर, मंगलवार

प्रातःकाल की शुभ वेला में हरिद्वार पहुँचे। गढवाल के भूदान-संयोजक श्री मानसिंह रावत तथा अन्य भाई स्टेशन आये

हुए थे। सब लोग तो हरिद्वार में ही रहे, किन्तु श्री भाईजी को विश्राम करने का अवकाश कहाँ, आते ही वे टिहरी के लिए चल पड़े।

इस स्थल पर टिहरी-गढ़वाल तथा गढवाल का संक्षिप्त परिचय दे देना अनुपयुक्त न होगा। ऋषि, मुनि, सिद्ध, साधक एव भक्त-भागवतों की प्रियभूमि गंगोत्री, यमुनोत्री, केदार और बदरी-विशाल का यह परम पुनीत क्षेत्र उत्तराखण्ड, टिहरी गढवाल के नाम से प्रसिद्ध हिमालय के अञ्चल में बिखरा हुआ उत्तरप्रदेश का एक छोटा-सा भाग है। इसके उत्तर की ओर मानसरोवर, कैलाश एवं हिमालय के जैसे अभिन्न एवं समुज्ज्वल स्थल है, जो भारतीय संस्कृति के अन्तस्तल में उद्‌भासित उसके भी अविभाज्य अंग हैं। इस प्रदेश के एक ओर गगनचुम्बी पर्वत-शिखरें गर्व से मस्तक उठाये खड़ी है, तो दूसरी ओर कलकलवाहिनी निर्झरिणियों से सुशोभित गहरी घाटियाँ भी अपनी तुलना नहीं रखतीं। गंगा, यमुना एवं टोंस टिहरी-गढ़वाल की एवं अलखनन्दा, धौली, नन्दाकिनी, मन्दाकिनी, पिंडर, सरस्वती, बिट्टी और नयार गढ़वाल की प्रसिद्ध नदियाँ हैं। ये नदियाँ इतनी गहराई में है कि इनसे सिंचाई का काम नहीं हो सकता। कहीं-कहीं अन्य छोटी नदियों का उपयोग सिंचाई के लिए करते है।

पूर्व काल में इस प्रदेश में अनेक छोटे गढ़ थे, जिन पर छोटे-छोटे सामन्त सरदार और ठकुरी राजा लोगों का आधिपत्य था। इसी कारण पन्द्रहवीं शताब्दी से इसका गढ़वाल नाम प्रचलित हुआ। सन् १६८८ ई० में मध्य प्रदेश के धार जिले से आये हुए राजपूत शासकों ने यहाँ अपने राज्य का विस्तार किया, जिस पर उनका शासन १८०२ ई० तक अबाधित रूप से चलता आया।

इसी समय गोरखों ने इसके अधिक भू-भाग पर अपना अधिकार जमा लिया। तत्पश्चात् सन् १८१५ ई० में वहाँ के राजा ने अंग्रेजों की सहायता से गोरखों को हटा दिया। किन्तु, इस सहायता के बदले ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने आधा गढ़वाल हथिया लिया। जब भारत स्वतंत्र हुआ, तब अन्य देशी रियासतों की भाँति गढवाल राज्य भी भारत में आ मिला और अब यह उत्तर-प्रदेश का एक अंग है।

इस पूरे क्षेत्र के उत्तरप्रदेश में विलीन हो जाने के पश्चात् यह टिहरी-गढवाल और गढवाल इन दो हिस्सों में बाँट दिया गया है। यह पूरा भू-भाग हिमालय की मध्य श्रेणी में है। टिहरी-गढ़वाल में मैदानी क्षेत्र अधिक है और यहाँ गंगोत्री एवं यमुनोत्री को छोड़कर उल्लेखनीय पर्वत-शिखर नहीं के बराबर है। गढ़वाल में इसके विपरीत गोचर के अतिरिक्त मैदानी क्षेत्र बहुत कम है, किन्तु ऊँची-ऊँची चोटियाँ बहुत है। विदेशों से आकर कितने ही साहसिक पर्वतारोहियों ने उन महिमामय शैलशिखरों के दर्शन किये है तथा कितनों ने ही अपने उन अभियानों में प्राणों की बलि दी है। इन शिखरों का कुछ विवरण निम्नलिखित है।

१. नन्दा देवी, २६,६४५ फीट : यह गढवाल में पूर्व भारत की सबसे ऊँची चोटी है। पचास वर्षों से दिग्गज पर्वतारोही इस पर आरोहण का प्रयास कर रहे थे। अन्त में १९३६ ई० में एक ऐंग्लो-अमेरिकन-दल के दो व्यक्ति अपने प्रयास में सफल हुए।

२. कॉमेट, २५,४४७ फीट : यह गढ़वाल के उत्तर में है। १९३१ ई० में श्री एफ. एस. स्मिथ ने इस पर चढने में सफलता प्राप्त की।

३. त्रिशूल, २३,६६० फीट : सन् १९०७ ई० में डा० लौंग स्टाफ़ और सन् १९३३ ई० में कैप्टेन ओलिवर ने इसकी चोटी के दर्शन किये।

४. द्रोणागिरि, २३,१८४ फीट : सन् १९३९ ई० में स्विस दल का अभियान सफल हुआ।

५. माना चोटी, २३,८६० फीट : सन् १९३७ ई० में श्री एफ. एस. स्मिथ अपने आरोहण-प्रयास में सफल-मनोरथ हुए।

इनके अतिरिक्त अविगामीन, २४,१८० फीट; चौखम्भा, २३,४२० फीट; सतोपथ, २३,४२० फीट; श्री केदारनाथ शृङ्ग, २२,४७० फीट; हाथी पर्वत, २२,०७० फीट; गौरी पर्वत, २२,०२७ फीट; रानावन, २०,१०० फीट तथा और भी अनेक हिमाच्छादित शृङ्ग है, जिनकी शोभा अवर्णनीय है।

गढवाल तथा टिहरी-गढवाल का कुल क्षेत्रफल (गढ़वाल, ५,६२९ वर्ग मील तथा टिहरी-गढ़वाल ४,५०० वर्ग मील) १०,१२९ वर्ग मील है, जो लगभग ६९७९ ग्रामों में विभक्त है। यहाँ की जनसंख्या प्रायः साढे ग्यारह लाख (११,३६,९७९) बतायी जाती है। समस्त प्रदेश में कठिनता से तीन प्रतिशत भूमि कृषि के योग्य है। पहाड़ों की खेती अर्थात् पत्थर पर अन्न पैदा करना। जहाँ कुछ सुविधा होती है, काट-छाँटकर सीढीनुमा खेत बना लिये जाते है; वे भी स्थायी नहीं होते। वर्षा इत्यादि के कारण पहाड़ टूटते-गिरते रहते है, उनके साथ ही उन खेतों का अस्तित्व भी बनता-बिगड़ता रहता है। गंगा के किनारे कुछ बड़े मैदानी क्षेत्र हैं। यदि आज के यंत्र-युग में उनकी सिंचाई की कुछ व्यवस्था की जा सके, तो उनमें अच्छी पैदावार हो सकती है।

यहाँ की मुख्य उपज गेहूँ, धान के अतिरिक्त साँवा, जौ तथा ऊँचे स्थानों में कोदो, फापरा चौलाई इत्यादि है। आलू, सेव, आड़ू तथा चेस्टनट की भी अच्छी उपज होती है। तम्वाकू की खेती भी कहीं-कहीं करते है।

खेती के अतिरिक्त यहाँ का मुख्य उद्योग भेड़-बकरी पालना है। ऊँचे एवं तंग हिमानी मार्गों में इससे यातायात का काम भी लिया जाता है। ऊन कातना और बुनना प्रायः प्रत्येक व्यक्ति जानता है। ढोरों को चराने, मार्ग पर आते-जाते इनके हाथों की सलाई चलती ही रहती है। कहीं बुनकरों की अलग वस्तियाँ भी हैं। ऊँची कोटि के कालीन, गलीचे, ऊनी चादरें, गुलमें इत्यादि तैयार किये जाते है। चटाई, टोकरी आदि बनाने के छोटे-छोटे उद्योग भी चलते हैं। इधर के जगल घने होते है। उनमें लकड़ी चीरने और इधर वहुतायत से होनेवाले चीड़ के वृक्षों से राल निकालने का काम भी बड़े पैमाने पर होता रहता है।

यहाँ आयात की वस्तुओं में उपज पर्याप्त न होने के कारण गेहूँ, चावल के अतिरिक्त चना, नमक, तेल, गुड़, चीनी, वस्त्र, लोहा और लोहे की बनी वस्तुएँ मुख्य है। लकड़ी, लीसा (धूना) जड़ी-बूटियाँ, फल, ऊन तथा ऊन के सामान यहाँ से वाहर जाते हैं। यहाँ का सवसे अधिक व्यापार तिब्बत से चलता था। जब से तिब्बत चीन के आधिपत्य में चला गया है, तव से इस ओर भारत के व्यापार को वहुत धक्का पहुँचा है। प्राचीन काल से तिब्बत का भारत से न केवल व्यापारिक सम्बन्ध रहता आया है, अपितु, सांस्कृतिक और सामाजिक सम्बन्धों से भी दोनों देश एक दूसरे से अविभाज्य है। १८,४०२ फीट ऊँचे मानाधुरा तथा

१६,६२८ फीट ऊँचे नीतिधुरा को पार कर माना एवं नीति घाटियों के रहनेवाले व्यापारी तिव्वत तथा भारत के बीच व्यापार की कड़ी जोड़ने का काम करते हैं। गढ़वाल से अन्न, भारतीय कपड़े, मसाले इत्यादि ले जाते है और उधर से ऊन, ऊनी वस्तुएँ कस्तूरी, सोहागा, घोड़े, भेड़, बकरी, चमड़ा इत्यादि अनेक वस्तुएँ लाते है। तिव्वत से सारा व्यापार अदला-बदली (बार्टर) के आधार पर होता है। अब यह व्यापार नाम मात्र को रह गया है।

कच्चे माल की प्रचुरता होते हुए भी गृह-उद्योग के अभाव में यहाँ के लोग गरीब है। बाहर के ठेकेदार और सरकारी अफसर ही वस्तुतः सारी सम्पत्ति के स्वामी बने हुए है। प्रायः ९२ प्रतिशत लोगों के पास थोड़ी खेती को छोड़कर अन्य कोई धन्धा नहीं है। खेती से अधिक-से-अधिक वर्ष के ५-६ मास का भोजन मिल पाता है। बाकी महीनों में लोग गाँव से बाहर मजदूरी करके या अन्य धन्धे करके पेट पालते हैं।

इस ओर सन् १९०३ के पूर्व तक भूमि व्यक्ति की न होकर गाँव-समाज की होती थी। गाँव के सहकारी जीवन की कुछ झाँकी आज भी मिलती है। खेतों की निराई, गोड़ाई सब मिलकर करते हैं। किसीका घर टूट जाना दैवी प्रकोप माना जाता है और ऐसी दशा में सब मिलकर उसकी सहायता करते हैं।

पहले इस क्षेत्र में शाक्त एवं शैव सम्प्रदाय का अधिक प्रचार था। उसके पश्चात् दोनों का एक प्रकार से समन्वय करते हुए वैष्णव-धर्म व्यापक रूप से फैला। प्राचीन समय में सनकादि ऋषि, नारद, व्यास इत्यादि एवं आधुनिक काल में भी बुद्धदेव, शंकर, विवेकानन्द, रामतीर्थ आदि महापुरुषों ने इस देश में घूम-

घूम कर ज्ञानार्जन एवं ज्ञान-प्रचार के कार्य किये हैं। राजा भगीरथ ने इन्हीं पर्वत-श्रेणियों का सूक्ष्म अध्ययन कर अपनी दीर्घ-कालीन साधना एवं तपस्या के फलस्वरूप पृथ्वी पर गंगावतरण जैसा महान कार्य पूर्ण किया था। अर्जुन को किरात रूप में कैलाशपति का दर्शन इसी स्थान पर हुआ था। पाण्डवों का इस प्रदेश से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और आज भी उनकी मूर्तियाँ यहाँ सुपूजित होती हैं। बौद्ध-धर्म भी कभी यहाँ फैला था; अतः यत्र-तत्र बौद्ध-मूर्तियाँ भी देखने को मिलती हैं।

यहाँ के लोग छल-प्रपंच से परे, सीधे-सादे और ईमानदार एवं परिश्रमी होते हैं। यह इनका जन्मजात गुण है।

अमर शहीद श्री सुमनजी

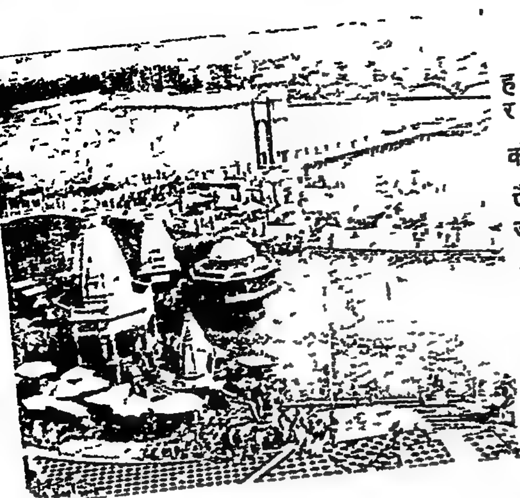
टिहरी के अमर शहीद श्री सुमनजी का उल्लेख किये बिना यह टिहरी-गढवाल की कहानी अधूरी ही रह जायेगी। देश के स्वतन्त्रता-संग्राम-यज्ञ में इन्होंने अपने प्राणों की आहुति देकर अमरत्व प्राप्त कर लिया है। आज इनके स्मरणमात्र से इस प्रदेश का मस्तक गर्व से ऊँचा हो जाता है। टिहरी पहुँचकर श्री भाईजी ने इन वीर-शिरोमणि की बलि-वेदी—जेल की उस तंग कोठरी—को देखा और आँखों में अश्रु भरकर उन्हें अपनी स्नेहपूर्ण श्रद्धाञ्जलि समर्पित की। ८४ दिनों का अनशन, जेल की अत्यन्त सँकरी वह कोठरी और उसमें इन अमर आत्मा का हँसते-हँसते प्राणोत्सर्ग! ये ऐसे तथ्य हैं, जो भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम को अन्य देशों की आजादी की लड़ाई से स्पष्टतया पृथक् लाकर खड़ा कर देते है और हिंसा के दलदल में फँसे हुए

विश्व को अहिंसा और सत्य की अजेय शक्ति का संदेश सुनाते है। इन अमर वीर श्री सुमनजी की स्मृति के साथ ही उन सभी ऐसे महान् आत्माओं का एक हृदयस्पर्शी चित्र कल्पना की आँखों के सम्मुख साकार हो उठता है, जिन्होंने सन् १८३० से १९४८ ई० तक स्वतंत्रता के इस महाबोधि को अपने हृदय के रक्त से सींचा था। श्री जयप्रकाशजी की इस हिमप्रदेशीय यात्रा का श्रीगणेश ऐसे अमर शहीद के रक्तपूत टिहरी क्षेत्र से हुआ, यह भी एक शुभ संयोग ही था।

हरिद्वार

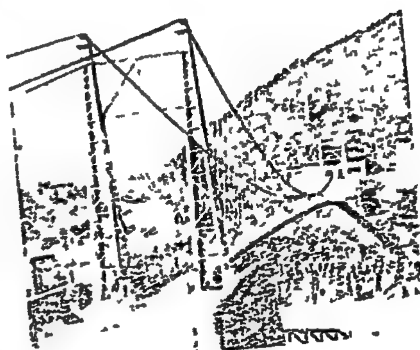
अब कुछ हरिद्वार की बातें भी कर लूँ। यहाँ हम लोग एक दिन-रात रहे। संयोग से आज अनन्त चतुर्दशी की पुण्य तिथि भी थी। गंगास्नान तो ऐसे भी होता, किन्तु इस सुयोग ने उसके महत्त्व को और भी बढ़ा दिया था।

यह हरिद्वार अथवा हरद्वार श्री बदरी-केदार की यात्रा का मुख्य मार्गद्वार है। हिमालय से विदा लेकर गंगा की अल्हड़ तरंग भी इसी मार्ग-द्वार से समतल भूमि का स्पर्श करती है— **'गिरि की गोदी में खेल बढ़ी निर्झरिणी अपनी अगम राह।'** गंगा का सम्बन्ध हरि और हर से तो प्रसिद्ध ही है। इन कारणों से इसका यह नाम पूर्णतः सार्थक है। भारत के मुख्य तीर्थों में यह एक है। हिमगिरि के सान्निध्य में गंगा-तट पर बसे रहने के कारण इसकी रमणीयता देखते ही बनती है। यहाँ प्रयाग तथा नासिक की भाँति ही प्रत्येक १२ वर्ष के उपरान्त कुम्भ पर्व पर बहुत बड़ा मेला लगता है, जिसमें देश के प्रत्येक भाग से गंगा-स्नान के लिए नर-नारियों का समुद्र उमड़ पड़ता है।

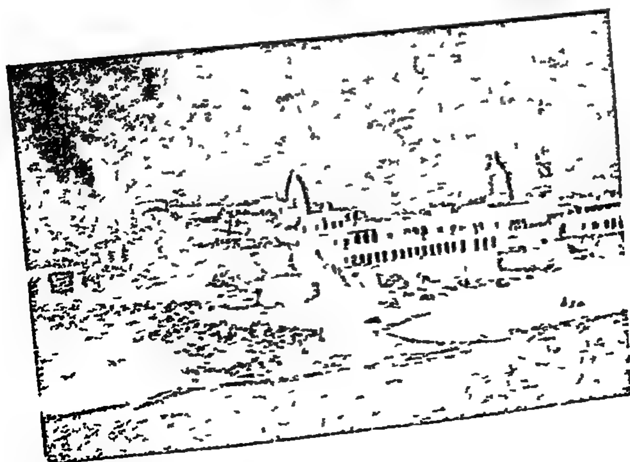


हर को पैड़ी हरिद्वार





लक्ष्मण झूला ऋषिकेश



स्वर्गाश्रम ऋषिकेश

देवप्रयाग

रुद्रप्रयाग

ब्रह्मकुण्ड (हर की पैड़ी) यहाँ का मुख्य आकर्षण है। विशेषतः सन्ध्योपरान्त यहाँ की शोभा देखते ही बनती है। कहीं कथाएँ होती रहती है, तो कहीं उल्लासमग्न नर-नारियों के दल के दल चाट की दूकानों को घेरकर खड़े होते हैं। गंगा की नृत्यपरायण तरंगों में आकाश थिरकता परिलक्षित होता है। अमावस्या के सुनील व्योम की ताराखचित शोभा हो अथवा पूर्णिमा की ज्योत्स्नामण्डित विभा, इन मुक्तागुम्फित तरंगों की मोहिनी सर्वदा ही अद्भुत है। यह सब एक साथ एकत्र सुषमावलि देखकर मनुष्य अपने-आपको भूल-सा जाता है और आनन्द के किसी अन्य लोक में जा पहुँचता है। रंग-बिरंगे पुष्पों से सुसज्जित पत्तों की हरी-हरी द्रोण-नाविका पर दीप-दान किये जाते है, जिसकी पंक्तिबद्ध शोभा कल्पना की वस्तु है। सबके अन्त में श्री गंगाजी की आरती उतारे जाने का दर्शन भी बड़ा ही भव्य होता है।

पार्श्ववर्ती पहाड़ों पर भी अनेक दर्शनीय स्थान है, जिनमें मनसा देवी तथा चण्डी देवी का मंदिर प्रसिद्ध है। श्री चण्डी देवी के लिए दो मील की कठिन चढाई तय करनी पड़ती है।

यहाँ से समीप ही कनखल तीर्थ है। वहाँ अपने पति देवाधि-देव शिव के प्रति अपने पिता दक्षप्रजापति द्वारा यज्ञ में निकले अपमानजनक शब्दों को सुनने के कारण स्व-शरीर को अपवित्र हुआ मान जगदम्बिका सती देवी ने योगाग्नि में प्रविष्ट होकर उस देह को ही नष्ट कर डाला था। दक्ष-यज्ञ-ध्वंस की यह गाथा तथा सती के गिरिजारूप में पुनर्देहधारण एवं अखंड तपस्या

द्वारा पुनः श्री शिव की प्राप्ति की शिक्षाप्रद कथा पुराणों में बड़े ही रोचक ढंग से वर्णित है।

ऋषिकेश

१६ सितम्बर, बुधवार

प्रातःकाल की पुण्य वेला में ऋषिकेश के लिए प्रस्थान हुआ। हरिद्वार से ऋषिकेश १४ मील दूर है। मोटरें, बसें और ट्रेनें बराबर आया-जाया करती हैं। सवा छह मील पर सत्यनारायण मंदिर पड़ता है। इसे सत्यनारायण चट्टी भी कहते हैं। पहले हरिद्वार से आते हुए पैदल यात्रियों के लिए यह पहली चट्टी अथवा प्रथम विश्राम-स्थल था। यहाँ श्री सत्यनारायण-कथा पर आधारित कुछ दृश्य कलात्मक रूप से प्रस्तुत किये गये हैं।

स्नान-भोजन से निबटकर सब लोग यहाँ के कतिपय दर्शनीय स्थलों को देखने के लिए चले। उनमें शिवानन्द आश्रम, लक्ष्मण झूला तथा गंगा के उस पार अवस्थित स्वर्गाश्रम के नाम उल्लेखनीय हैं। ऋषिकेश से दो मील दूर संत श्री शिवानन्दजी ने शिवनगर नामक एक कॉलोनी-सी स्थापित की है। यहाँ रहकर वे योग-विद्या का प्रचार करते हैं। जो लोग यहाँ रहकर योग सीखना चाहते हैं, उनके लिए यहाँ एकाधिक आकर्षण वर्तमान हैं। हिमालय के समुज्ज्वल सान्निध्य में बसे आश्रम के उस शान्त वातावरण में संतजी की देख-रेख के अन्तर्गत यहाँ योग-प्रशिक्षण का समुचित प्रबन्ध है। यहाँ आगरा के दयालबाग के ढंग पर, किन्तु थोड़े रूप में नित्य जीवन के उपयोग की वस्तुएँ बनाने का गृह-उद्योग भी चलता है।

वहाँ से कुछ दूर पर प्रसिद्ध लक्ष्मण झूला है। प्राचीन काल में गंगा के आर-पार यहाँ रस्सी का पुल था, जिसका व्यवहार करते समय झूलने के कारण झूला नाम सार्थक ही होगा। कहते हैं कि श्री लक्ष्मणजी ने यहाँ तप किया था। उनके ही नाम पर यह लक्ष्मणझूला प्रसिद्ध है। अभी भी पहाड़ों पर कहीं-कहीं वैसे रस्सी के पुल (झूले) दिखाई पड़ जाते है। ऐसे झूले में एक रस्सी ऊपर और एक रस्सी नीचे तनी होती है। ऊपर की रस्सी पकड़कर और नीचे की रस्सी पर पाँव जमाकर अधर में झूलते हुए एक वार में एक ही व्यक्ति पार हो सकता है। इसके लिए साहस के साथ-साथ अभ्यास की आवश्यकता भी प्रत्यक्ष है। अब यह लक्ष्मणझूला लोहे का विना पाये का एक सँकरा पुल है। पहले लक्ष्मणझूले को ही पार कर बदरी-केदार का पैदल मार्ग था। अब तो मोटर का मार्ग दूसरा ही है। यह पुल गंगा-तट से बहुत ऊँचाई पर निर्मित है। नीचे अतल में ऊबड़-खाबड़ चट्टानों को झकझोरती गंगा की वेगवती धारा अट्टहास किया करती है। उस ओर झाँकने से ही भय का संचार होने लगता है और यह बात सहसा ध्यान में आ जाती है कि पहले के लोग जीवन का मोह त्यागकर ही वैसे अरक्षित साधनों से इन दुर्गम मार्गों एं ऐसे भयंकर स्थलों को तय कर पाते होंगे। ऐसी रही होगी उनकी धार्मिक निष्ठा! जिनकी जीवन-स्पृहा ही चली गयी, फिर उनकी मुक्ति में क्या संदेह! मृत्युभय से परे उनका जीवन एक आनन्दमय लीला बना रहता है और इस शरीर में ही जीवन्मुक्त होकर वे संसार में विचरते हैं। तीर्थ-स्थली ऐसे निष्ठा-वान् व्यक्तियों के लिए मुक्तिदायिनी सिद्ध हो, तो क्या आश्चर्य!

पुल के उस पार स्वर्गाश्रम है, जो क्रमशः अधिकाधिक बसता जा रहा है। यहाँ सत्संग के लिए बहुत-से साधक प्रतिवर्ष चातुर्मास में एकत्र हुआ करते हैं। कुछ तो सदा ही रहते हैं। यात्रियों के निवास के लिए गीता-भवन तथा उसके अतिरिक्त भी अच्छी धर्मशालाएँ है। ऋषिकेश से नाव द्वारा भी गंगा पार कर स्वर्गाश्रम जाया जाता है। किन्तु, गगा का वेग अधिक होने के कारण, विशेषकर जब जल बढ़ा होता है, तब ऐसा करना कभी वस्तुतः स्वर्ग की यात्रा करा दे सकता है।

इन सब स्थानो को देखने में हम लोगों को प्रायः ३ घंटे लगे। सन्ध्या समय श्री भाईजी टिहरी से लौटे। यहाँ झंडा चौक में उनकी सभा का वृहत् आयोजन था। श्री जयप्रकाशजी को देखने और उनका भाषण सुनने के लिए लोग दूर-दूर से आकर इकट्ठे हुए थे। सभा ८ से १० बजे रात्रि तक चलती रही। उनके एक-एक शब्द से सर्वोदयमूलक जीवन का सत्य बरस रहा था और लोग शान्त भाव से इस अमृत का पान कर रहे थे।

ऋषिकेश में हम लोगों की मेजवान माताजी का जीवन एक साधना का जीवन है। बाल्यावस्था से ही वे वैधव्य का जीवन बिता रही हैं। उनके निवास-स्थान गोपाल-कुटीर का नामकरण उनके स्वर्गीय पति की स्मृति में किया गया है, जिसके साथ ही लगा एक मंदिर तथा उद्यान है। इन पवित्रहृदया माताजी के समागम का सौभाग्य प्राप्त कर मुझे परम प्रसन्नता हुई।

श्री केदारनाथ की ओर

२० सितम्बर, गुरुवार

आज हम लोगों की हिमगिरि की वास्तविक यात्रा आरम्भ

हुई। गढ़वाल मोटर ऑनर्स यूनियन ने ऋषिकेश से इस यात्रा के लिए एक बस अपनी ओर से दी थी। ८ बजे प्रातः जलपान के पश्चात् श्री जयप्रकाशजी और उनकी टोली श्री केदारनाथजी के लिए रवाना हुई। शिवनगर में संत श्री शिवानन्दजी की ओर से कुछ व्यक्ति प्रतीक्षा में खड़े थे। जब मोटर वहाँ पहुँची, तब उन लोगों ने श्री भाईजी से आश्रम का आतिथ्य स्वीकार करने का आग्रह किया। महात्माजी और भाईजी बड़े प्रेम से मिले। ७० साल के महात्माजी पूर्ण स्वस्थ दीख पड़े। सब लोगों को जलपान कराया गया। कुछ देर पश्चात् उनसे विदा लेकर पुनः यात्रा आरम्भ हुई।

सब लोगों को लेकर 'बस' पर्वतीय मार्ग पर बढ़ चली। पहाड़ काटकर बनाया हुआ नाचता-सा घूम-घुमाव मार्ग कभी नीचा, कभी ऊँचा, उतरता-चढ़ता हिमालय की कठिन चढाई को आत्मसात् करता हुआ उसके महिमामय वक्ष में समाहित होता चला गया है। एक ओर शैल के दीवाल जैसे ऊँचे ढालू हिस्से कहीं आकाश को छूते हुए, दूसरी ओर वैसी ही गहरी खाई कहीं पाताल से मिली हुई, धान के छोटे-छोटे ढालुआँ खेत, मिट्टी पत्थर के बने छोटे-छोटे घर, जिनके छत भी प्रायः पत्थर के बने होते, दूर-दूर पर बसे गाँव, पहाड़ी पुष्पों की फैली हुई कतारें, ऊँचे गर्वीले वृक्ष और भागीरथी की वेग से बहती एवं कभी समीप आकर और कभी सहसा दूर जाकर अठखेलियाँ करती मञ्जु-मुखरित धारा, इन सभीको छोड़ती 'बस' निर्लिप्त योगी की भाँति अपने गन्तव्य की ओर निरन्तर बढती चली जा रही थी।

इन मनोहर दृश्यों के मध्य से होते हुए हम लोग प्रायः ११ बजे देवप्रयाग पहुँचे। मार्ग में स्थान-स्थान पर बने स्वागत-तोरण गढ़वाली भाइयों की श्रद्धा एवं कलापूर्ण अभिरुचि का परिचय दे रहे थे। देवप्रयाग में एक वृहत् जनसमूह श्री भाईजी के दर्शन के लिए एकत्र था। पहुँचते ही गगनभेदी नारे एवं जय-ध्वनि गूँज उठी।

ऋषिकेश से देवप्रयाग ४५ मील दूर एवं समुद्रतल से १,५०० फीट की ऊँचाई पर अवस्थित एक सुन्दर स्थल है। यहाँ अलखनन्दा और भागीरथी का संगम है। ऐसा लगता है कि इन दो पवित्र नदियों के रूप में दो बहनें गले मिल रही हों। यहाँ श्री रामचन्द्रजी का प्राचीन मन्दिर है। बस्ती अच्छी है और यात्रियों की आवश्यकता की सभी वस्तुएँ मिल जाती हैं।

यहाँ से ४९½ मील आगे अगस्त्य मुनि तक मोटर जाती है। वहाँ से श्री केदारनाथ के लिए ३८ मील पैदल मार्ग रह जाता है। अगस्त्य मुनि से सामान ले चलनेवाले बोझिया की व्यवस्था, जिन्हें गढ़वाली भाषा में 'दाई' कहते हैं, देवप्रयाग में ही कर ली जाती है। तौल के अनुसार वे पारिश्रमिक लेते हैं। रुद्र-प्रयाग से ऐसे यात्रियों के लिए, जो पैदल नहीं चल सकते, डाँडी, झम्पान इत्यादि की व्यवस्था की जा सकती है। 'दाई' अधिकतर नेपाली होते हैं और डाँडी, झम्पान, कंडी और घोड़े गढवालियों के होते है। कंडी कुर्सीनुमा टोकनी होती है, जिसे पीठ पर बाँधकर ले चलते हैं। इस पर यात्री बाहर पाँव लटकाकर बैठ जाता है। झम्पान की बनावट तामजान जैसी होती है, जिसके दोनों ओर दो लम्बे डण्डे लगे होते हैं। इसे चार आदमी कन्धे पर उठाकर ले चलते हैं। डाँडी इसीका उन्नत रूप है।

हिमालय में सामान सर्वत्र सिर के बदले पीठ पर ढोया जाता है। सामान बाँधने की रस्सी में बीच में नेवार का एक चौड़ा पट्टा लगा होता है। उसे ललाट पर सहारा देकर कस लेते हैं। दोनों हाथ मुक्त रखते है अथवा टेकने के लिए एक हाथ में लकड़ी लिये होते हैं। पर्वतीय मार्ग पर सामान ले चलने का यही मार्ग सुगम भी है। इसमें एक लाभ यह होता है कि सामान पीठ पर रहे, तो आगे भार देकर चलने में आसानी होती है। दूसरा लाभ यह भी है कि इन मार्गों पर कहीं सुस्ताने की आवश्यकता हुई, तो सामान उतारने, उठाने की झंझट नहीं होती और उसके लिए किसी व्यक्ति की सहायता की भी आवश्यकता नहीं होती। पट्टा ललाट में लगाया, थोड़ा झुके और सामान पीठ पर ले लिया, जहाँ जी चाहा, किसी चट्टान के सहारे सामान टेककर खड़े हो गये। ऊँचे-नीचे रास्तों पर बोझ उठाकर इन्हें चलते देख इनके श्रम से द्रवित होकर मैदानों से गया हुआ कभी कोई सहृदय यात्री इनसे अपनी सहानुभूति प्रकट कर रहा था। सब बातें सुन लेने पर पहाड़ी भाई ने जिज्ञासा की : "क्या आपकी ओर समस्त भूमि समतल होती है ?" उत्तर मिला : "हाँ।" "क्या पूर्णतः समतल, थोड़ी भी उतार-चढ़ाव नहीं ?" जिज्ञासा अब आश्चर्यमिश्रित परेशानी में बदल चुकी थी। "तो लोग वहाँ चलते कैसे होंगे ? समतल भूमि पर चलते-चलते पैर न थक जाते होंगे ?" अब सहानुभूति के पात्र बेचारे मैदानी भाई थे।

देवप्रयाग में एक ऐसे महाराष्ट्रियन साधु से भेट हुई, जो स्वर्ण बनाने की सिद्धि प्राप्त करने में चार वर्षों से संलग्न है। इनका कहना है कि वे अपने स्वार्थ के लिए यह नहीं कर रहे है,

अतः सफलता प्राप्त कर उसका लाभ देश को समर्पित कर देंगे। श्री भाईजी से उन्होंने अपनी साधना के सम्बन्ध में यह बात बतायी, किन्तु वे यह नहीं बता सके कि स्वर्ण का वास्तविक सम्पत्ति के रूप में क्या मूल्य है और जो है भी, उसका इस प्रकार कृत्रिम विधि से जितना चाहें स्वर्ण-निर्माण की कला प्रकट हो जाने के उपरान्त क्या महत्त्व रह जायगा।

सन्ध्या समय सर्वोदय-सम्बन्धी सभा हुई।

२१ सितम्बर, शुक्रवार

आज श्री भाईजी का विश्राम-दिवस होने के कारण यात्रा स्थगित रही। चारों ओर बिखरी मोहक दृश्यावली को देखते दिन कैसे बीत गया, यह पता न चला। संध्या से ही आकाश में बादल घिर आये थे। रातभर वर्षा होती रही। पहाड़ी क्षेत्रों में बिना ऋतु के भी प्रायः वर्षा होते रहना साधारण बात है।

२२ सितम्बर, शनिवार

कीर्तिनगर, श्रीनगर, रुद्रप्रयाग होते आज अगस्त्य मुनि जाना था। प्रातः ८ बजे जलपान के पश्चात् प्रस्थान हुआ। रात से जो वर्षा आरम्भ हुई थी, वह अभी भी हो रही थी। २ घण्टे में कीर्तिनगर पहुँचे। पहले से ही लोग एकत्र थे, पहुँचते ही सर्वोदय-सभा हुई। यहाँ पुल बन रहा था, अतः सभा के पश्चात् पुल के उस पार दूसरी मोटर से श्रीनगर के लिए चले। एक घण्टे में वहाँ पहुँच गये। यह स्थान देवप्रयाग से २० मील दूर है। चट्टियों, धर्मशालाओं के अतिरिक्त डाक-बँगला तथा इन्स्पेक्शन-बँगला है, होटल भी अब खुल गये हैं, जिनमें यात्री अपनी सुविधानुसार ठहरते है।

भोजनोपरान्त शीघ्र ही रुद्रप्रयाग के लिए चल पड़े। मार्ग में भव्य दृश्यों के क्षण-क्षण बदलते चित्र निरन्तर नये आकर्षण के साथ मन में सहज उल्लास एवं उत्साह की सृष्टि करते चल रहे थे। बीच में कभी-कभी एक-दो चुटकुले सुनने को मिल जाते और बस के अन्दर की उस छोटी दुनिया में विनोद का एक वातावरण उपस्थित हो जाता। ऐसे समय में श्री भाईजी की हास्य-प्रियता भी छिप न पाती।

प्रायः ३ बजे श्रीनगर से १९ मील दूर रुद्रप्रयाग पहुँचे। वहाँ से कुछ इधर ही एक बृहत् जन-समुदाय एकत्र था। श्री भाईजी ने मोटर छोड़ दी और पैदल ही रुद्रप्रयाग तक गये। एक लम्बा जुलूस चल रहा था और जयघोष के नारे गूँज रहे थे। श्री शंकरजी के मंदिर के आगे सभा का आयोजन था। प्रायः एक घण्टे तक श्री भाईजी ने सर्वोदय की बात गढवाली भाइयों को सरल सुबोध ढंग से समझायी।

समुद्रतल से १,९८० फीट की ऊँचाई पर यह स्थान भी बहुत सुन्दर है। यहाँ अलखनन्दा और मन्दाकिनी का संगम है। देव-प्रयाग में मन्दाकिनी और भागीरथी का संगम था। मन्दाकिनी, भागीरथी ये सभी नाम गंगा के एक नाम में ही समाहित हैं, किन्तु इधर इन नामों से पृथक् धाराओं का बोध होता है।

यहाँ से चलकर गोधूलि-वेला में १०½ मील आगे अगस्त्य मुनि पहुँचे। मन्दाकिनी के तट पर यह एक मनोरम स्थान है। कभी अगस्त्य मुनि ने यहाँ रहकर तपस्या की थी। उस दिव्य-काल की स्मृति में यहाँ श्री अगस्त्यजी का एक मंदिर है। हरद्वार से अगस्त्य मुनि तक १०८½ मील मोटर-मार्ग है। यहाँ से

श्री केदारनाथ तक (त्रियुगी नारायण होते हुए) ४३½ मील पैदल मार्ग रह जाता है।

हम लोगों का आज का पड़ाव अगस्त्य मुनि में ही था। यहाँ भी पहले से ही एक सर्वोदय-सभा आयोजित थी। हिमालय जैसा ही महान् एवं पवित्र सर्वोदय-विचार श्री भाईजी लोगों को प्रायः दो घण्टे तक बताते रहे।

२३ सितम्बर, रविवार

आज से पैदल चलना था, अतः कुछ सवेरे ही यात्रा आरम्भ हुई। अगस्त्य मुनि से ४ मील दूर चन्द्रपुरी है। वहाँ लगभग ८ बजे पहुँचे। सर्वोदय-सभा हुई। सभा के पश्चात् चन्द्रपुरी में ही जलपान हुआ और फिर आगे बढ़े।

उत्तराखण्ड-विद्यापीठ के संस्थापक श्री गंगाधर मठानी भी चन्द्रपुरी से यात्रा के साथ चले। आप उत्तर प्रदेश विधान-सभा के प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी की ओर से एक सदस्य निर्वाचित हुए हैं तथा भूदान-कार्य में भी उत्साह रखते हैं।

चन्द्रपुरी से ३ मील दूर आज के पड़ाव भीरी पहुँचे। ११ बज चुके थे। भोजन, विश्राम हुआ। सन्ध्या समय सर्वोदय-सभा हुई। गढ़वाल में श्री भाईजी की यह १०वीं तथा आज की दूसरी सभा थी।

२४ सितम्बर, सोमवार

आज का पड़ाव गुप्तकाशी में था। भीरी से चले, तो मार्ग में कुछ दूर तक अधिक चढ़ाई मिली। प्रायः आधा मार्ग चलकर हम ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहाँ से इस यात्रा में आज प्रथमतः हिममण्डित शिखरों की धवल सुषमा दृष्टिगोचर हो रही थी।

अब हलका और शीतल पहाड़ी पवन आरम्भ हो गया था। दूर-दूर पर विखरे वादल के टुकड़े कभी पास आकर सुखद स्पर्श देते हुए निकल जाते और वातावरण में फैलकर एक अद्भुत् उद्भावना की सृष्टि करते।

प्रायः ९ बजे गुप्तकाशी पहुँचे। यह भीरी से छह मील दूर है। मंदाकिनी के दाहिने तट पर बसा हुआ समुद्रतल से ४,५५० फीट ऊँचा यह भी एक सुन्दर स्थान है। यहाँ श्री विश्वेश्वर भगवान् का मंदिर है, जिसमें लिंगस्वरूप शिवजी विराजमान हैं। बायीं ओर एक और मंदिर है, जिसमें सङ्गमर्मर के नन्दी पर विराजमान अर्द्ध-नारीश्वर की सुन्दर प्रतिमा है। सामने गरुड़जी का मंदिर है। शिव-मंदिर के साथ गरुड़-मन्दिर आज प्रथम बार देखा। मंदिर के प्राङ्गण में एक छोटा कुण्ड है, जिसमें हस्तिशुण्ड एवं गोमुखी से गंगा, यमुना—नाम की निर्मल जल-धारा अविरल रूप से गिरा करती है। बताया गया कि यहाँ गुप्त-दान का बड़ा माहात्म्य है। दाता के अहङ्कार का भी जिसमें स्वतः दान हो जाता हो, ऐसे गुप्त-दान की महिमा निश्चय ही बहुत बड़ी है। ऐसी मुक्त भावनाओं के प्रेरणा-केन्द्र गुप्तकाशी जैसे स्थलों का माहात्म्य फिर क्यों न श्लाघनीय हो।

यहाँ एक छोटी, किन्तु अच्छी-सी हाट है, जिसमें यात्रियों की आवश्यकता की सभी वस्तुएँ मिलती हैं। धर्मशाला, औषधालय एवं डाक-तारघर हैं। हम लोगों के ठहरने की व्यवस्था मंदिर के पार्श्व में बने एक मकान में थी। स्थान स्वच्छ था।

संध्या समय सर्वोदय-सभा हुई। सदा की तरह ही अधिक सख्या में लोग एकत्र थे। श्री भाईजी ने अपने भाषण में

विस्तारपूर्वक सर्वोदय की बात बताते हुए लोगों को समझाया कि छुआछूत के इस भेदासुर का अन्त होना समस्त मानवता के, देश के तथा स्वयं उन लोगों के कल्याण की दृष्टि से भी परमावश्यक है; साथ ही हिमालय की ऊँची चढ़ाई का दृष्टान्त देते हुए उन्होंने कहा कि कैसे एक दुर्बल व्यक्ति के लिए भी एक-एक पग बढ़ाते हुए अन्ततः विश्व-बन्धुत्व के सर्वोदय-शिखर पर पहुँचना सुगम हो सकता है। प्रायः दो घण्टे में सभा विसर्जित हुई।

रात्रि में प्रायः ९ बजे शयनार्ति का दर्शन हुआ। इस शान्त एवं पवित्र वातावरण में उसकी शोभा द्विगुणित हो उठी थी।

२५ सितम्बर, मंगलवार

प्रातःकाल के मधुर प्रकाश में गुप्तकाशी से चले। सात मील दूर फाटा चट्टी पहुँचने में नौ बज गये। मार्ग में स्थान-स्थान पर श्री भाईजी के दर्शन के लिए समुत्सुक जन-समुदाय एकत्र मिलता। दूर से ही उन्हें आते देख उसमें उल्लास की लहर दौड़ जाती। माला पहनाने के लिए आपस में होड़ लगती। कुछ दूर साथ चलते। जीवन के सुख-दुःख की, समाज की उन्नति-अवनति की, सर्वोदय की बातें दिल खोलकर करते, पूछते। कहीं उन्हें दस-बीस मिनट के लिए रोक लेते और एक छोटी सभा ही हो जाती। इस प्रकार पड़ाव पर पहुँचने में कुछ विलम्ब लग ही जाता।

फाटा में भी बहुत लोग एकत्र थे, उनमें विद्यार्थियों की भी बड़ी संख्या सम्मिलित थी। आते ही सर्वोदय-सभा हुई। पहले विद्यार्थियों ने स्वागत-गान गाया, तत्पश्चात् श्री भाईजी का भाषण

हुआ, जिसमें उन्होंने विद्यार्थियों को लक्ष्य करते हुए यह भी बताया कि सर्वोदय की दृष्टि से वास्तविक शिक्षा का क्या अर्थ है।

आज का पड़ाव फाटा में ही था। सामने ही मुक्ता-तरंगित निर्मल झरना कलकल निनाद करता वह रहा था, मानो अपने मधुर संगीत से थके पथिकों को तन-मन की क्लान्ति दूर करने के लिए अपने शीतल स्पर्श का निमंत्रण दे रहा हो। यहाँ से दो फर्लाङ्ग दूर जमदग्नि आश्रम है। कहते हैं कि अतीत-काल में जमदग्नि ऋषि ने वहाँ तपस्या की थी। इसी प्रकार इन पर्वत-श्रेणियों में पूर्वकालीन भारतीय जीवन की कितनी ही तपःपूत झाँकियाँ उद्भासित है, जो कभी भारतीय संस्कृति के गौरवपूर्ण स्रोत रहे है। उस दीर्घ कालावधान को पार कर परम्पराप्राप्त ये जन-श्रुतियाँ प्राचीन भारत की झाँकी देने के लिए महत्त्वपूर्ण वातायनस्वरूप हैं, और यदि इतिहासान्वेषी इस ओर प्रयास करें, तो कोई आश्चर्य नहीं कि आर्य-संस्कृति विषयक ऐसी वहुत तथ्य की बातें प्रकाश मे आयें, जो अभी भूतकाल के अन्धकार में विलुप्त है।

घर से चले आज दस दिन हो चुके थे। अभी तक उधर का कोई समाचार न मिला था। फाटा पहुँचे, तो डाक पहले से प्रतीक्षा कर रही थी।

स्नान-भोजन के पश्चात् थोड़ा विश्राम हुआ, तत्पश्चात् यहाँ से ५ मील दूर आज के अन्तिम पड़ाव रामपुर के लिए चले। चार वजे वहाँ पहुँचे। रामपुर में भी जनोल्लास का वही दृश्य उपस्थित था। आते ही सर्वोदय-सभा हुई। संक्षिप्त मार्ग-सभाओं को छोड़कर आज की यह दूसरी सभा थी।

रात्रि में भोजनोपरान्त मुन्नी ने एक-दो भजन सुनाये। फिर विश्राम की तैयारी हुई।

२६ सितम्बर, बुधवार

रामपुर से त्रियुगी नारायण ५ मील दूर एवं समुद्रतल से ७,००० फीट की ऊँचाई पर स्थित है। वहाँ के लिए कुछ ही दूर अपेक्षाकृत अधिक ऊँचाई पर जाना था, अतः तीन मील की खड़ी चढ़ाई पार करनी पड़ी। जब वहाँ पहुँचे, तो साढ़े नौ बज चुके थे। श्री भाईजी के दर्शन एवं भाषण के अभिलाषी बहुत-से लोग एकत्र थे। प्रायः ११ बजे तक सभा होती रही।

त्रियुगी नारायण इधर का एक प्रसिद्ध स्थान है। कहते है कि भगवान् रुद्र को प्रसन्न करने के लिए कभी श्री विष्णु भगवान् ने यहाँ तप किया था। न जाने किस प्रसंग में उस सर्वेश्वर ने अपनी यह अद्भुत लीला रचायी थी। यहाँ भगवान् विष्णु (त्रियुगी नारायण) की मनोहर मूर्ति स्थापित है। मध्य में साक्षात् प्रभु विराजमान हैं, वाम पार्श्व में महारानी लक्ष्मी एवं दक्षिण पार्श्व में वीणावादिनी देवी सरस्वती सुशोभित हो रही हैं। भगवान् के नाभि-स्थल से सरस्वती की धारा निकली है, जिससे छोटे-छोटे चार कुण्ड निर्मित हैं। उनके नाम ब्रह्म-कुण्ड, रुद्र-कुण्ड, विष्णु-कुण्ड एवं सरस्वती-कुण्ड हैं। इनमें क्रमशः आचमन, स्नान, मार्जन एवं तर्पण किया जाता है। यहाँ भी गुप्तदान की परिपाटी है। बताया गया कि इन कुण्डों में पीत वर्ण के दो पनडोल सर्पों की जोड़ी रहती है, जो विषैले नहीं है। इन सर्पों का दर्शन शुभ माना जाता है।

मंदिर में जाने पर प्राचीन मूर्तियों के स्थान पर उनके सामने

हीं प्रस्थापित रजतप्रतिमा के दर्शन यात्रियों को होते हैं। प्राचीन मूर्तियों के दर्शन नहीं कराये जाते। मंदिर के सभा-मण्डप में अतीत काल से एक अग्निकुण्ड प्रज्वलित है। प्रसिद्धि है कि शिव-पार्वती-विवाह इसी स्थल पर हुआ था और उसी दिव्य स्मृति में इस यज्ञ-कुण्ड को तब से ही उद्भासित रखते चले आते है। यहाँ धर्म-शिला पर शय्यादान की परिपाटी भी उसी महान् पर्व की सूचिका प्रतीत होती है।

भोजनोपरान्त यहाँ से ५ मील दूर गौरीकुण्ड के लिए प्रस्थान हुआ। जैसे त्रियुगी नारायण के लिए खड़ी चढाई पार करनी पड़ी थी, वैसे ही गौरीकुण्ड के लिए सीधा उतार मिला था। मानो पहाड़ी यात्रा भी एक जीवन-दर्शन हो। जैसे जीवन में लक्ष्य तक पहुँचने के पूर्व बहुधा कितने ही उतार-चढ़ाव आया करते हैं, वैसे ही कभी बहुत ऊँचे चढ़ना, पुनः नीचे उतरना और इस चढाव-उतार से निर्लेप गन्तव्य शिखर की ओर बढते जाना! इस भावना का उदय मेरे मन में सन् १९४२ में पिण्डारी ग्लेशियर की यात्रा के समय हुआ था। तेरह हजार फीट जाना है, नौ हजार फीट आ चुके, अब तो थोड़ा ही बचा, किन्तु देखते है कि दूसरे ही दिन पाँच हजार फीट की ऊँचाई पर उतरना पड़ा। कठिनतापूर्वक ऊपर चढ़कर इस प्रकार नीचे उतरना खलता तो है, लेकिन यह भी लक्ष्य का पूरक ही है, इस दृष्टि से देखें, तो यह उतार-चढाव की भेद-भावना विलुप्त हो जाती है। और यह कौन जानता है कि उस उतार में भी सौंदर्य की अपार निधि, जीवन का अद्भुत श्रेय छिपा न हो।

कम-से-कम आज की उतराई ने तो हमें ऐसे ही स्थान पर

ला पहुँचाया। मन्दाकिनी का पावन स्रोत बहुत ऊँचाई से विस्तृत प्रपात का रूप धारण कर गिर रहा था, जिसकी शोभा देखते ही बनती थी। वायु में उड़ते हुए जल-कण दूर तक फैल रहे थे और उन पर पड़ती हुई सूर्य-किरणें अनेक रंगों में चमक रही थीं। श्री भाईजी और श्री बहनजी कुछ पूर्व ही यहाँ पहुँच चुके थे और रुककर इस अपूर्व शोभा को देख रहे थे। इस स्थल का नाम मन्दाकिनी एवं वासुकी गंगा के संगम के कारण सोनप्रयाग रखा गया। इधर जहाँ कहीं दो प्रमुख धाराओं का मिलन हुआ है, उसे प्रयाग संज्ञा दे रखी है, जैसे देवप्रयाग, रुद्रप्रयाग इत्यादि। इस प्रकार कुल पाँच प्रयाग प्रसिद्ध है।

सन्ध्या समय प्रायः चार बजे गौरीकुण्ड पहुँचे। यहाँ गौरीशंकर तथा राधाकृष्ण के मंदिर हैं। समीप ही 'गौरी-कुण्ड' है तथा एक अन्य कुण्ड भी है। जल का स्वाद खारा है और रंग किञ्चित् पीला है। कहते हैं कि सती का पार्वती रूप में इसी स्थान पर पुनः प्रादुर्भाव हुआ था। यहाँ भी अच्छी बस्ती है और यात्रियों के लिए सभी सुविधाएँ प्राप्त हैं।

हम लोगों का निवास ठीक मन्दाकिनी-तट पर था। उसके बगल के ओसारे को निर्मल तरंगें स्पर्श कर रही थीं तथा उनसे निकलती कलकल-ध्वनि का एक अद्भुत एवं अबाध संगीत वातावरण में गूँज रहा था। सामने वेग से बहती जलराशि के उस पार थोड़े खुले भू-भाग के ऊपर उत्तरोत्तर उठती पर्वत-शृङ्खलाओं का अनन्त विस्तार फैलता चला गया था, जिसकी अखण्डता संध्या के धूमिल प्रकाश में क्रमशः अधिकाधिक अभेद्य होती जा रही थी। जैसे धरती पर संध्या घिरती आ रही थी, वैसे आकाश को

ढँकते हुए मेघ-समूह भी घने होते जा रहे थे। रात गहरी होते न होते वर्षा आरम्भ हो गयी। कृष्णपक्ष की अँधेरी रात्रि काले मेघों के कारण और भी तमसांध दिखाई पड़ती थी। नीचे बहती मन्दाकिनी का मंजु मधुर स्वर वर्षा के शोर में दब गया था और कभी-कभी जब बिजली चमक उठती, तब उठे हुए पार्श्ववर्ती पर्वत-शिखर जगत् को आत्मसात् करते प्रलयकालीन समुद्र की ऊँची उठती लहरों जैसे परिलक्षित होते। हवा के तीव्र झोंके बन्द होते, तो वर्षा जोर पकड़ती और वर्षा शान्त होती, तो मरुत्देव भीषण रूप धारण करते। रात्रि पर्यन्त न्यूनाधिक रूप से प्रकृति की यह क्रीडा चलती रही।

२७ सितम्बर, गुरुवार

प्रातःकाल वर्षा का वेग अधिक रहने के कारण यात्रा कुछ विलम्ब से प्रारम्भ हुई, तथापि उस समय भी बूँदाबाँदी लगी हुई थी। आज इतने दिनों से अभिलषित श्री केदारनाथ के दर्शन होने थे और अब वहाँ पहुँचने में केवल ७ मील का अन्तर रह गया था। अतः मन में स्वभावतः और दिनों से अधिक उत्साह था। लक्ष्य की प्राप्ति में देरी और दूरी जैसे कम होती जाती है, वैसे उसकी प्राप्ति की उत्सुकता तथा आकांक्षा और भी बढती जाती है।

श्री केदारनाथजी से प्रायः २-३ मील इधर से ही अधिक ऊँचाई के कारण वृक्षों की शृंखला समाप्त हो चुकी थी। अब जिधर दृष्टि जाती, उधर दूर तक मनोरम पुष्प बिछे दिखाई दे रहे थे। कुछ दूर तक साथ देकर पुष्पों ने भी विदा ली और अब तो केवल सपाट चट्टानें ही दीख पड़ती थीं। लेकिन उन पर भी

कहीं-कहीं ऐसी रंग-बिरंगी चित्रकारी हो रही थी कि उसे देखकर प्रकृति की चित्रशाला का भ्रम होता था। इन सबके परे दूरस्थित हिममंडित शिखर ऐसे दीख पड़ते थे, मानो हिमवान् ने अपने अनेक मस्तकों पर हीरक किरीट धारण किये हों। समस्त दृश्यावलि को बादलों के अर्द्ध-श्वेत नभ और झीने आवरण यदा-कदा ढाँक लेते और तब पर्वत-मालाओं की परस्पर दूरी तथा नीची खाइयों को भरती हुई यह मेघ-रचना एक गर्जनविहीन समुद्र जैसी परिलक्षित होती, जिसके मध्य से ऊँची उठती सर्पाकार पग-डंडी कुछ दूर जाकर घन गह्वर में विलीन हो गयी दीख पड़ती। वायु द्वारा आलोड़ित चञ्चल मेघ-तरंगों के अभ्यन्तर से पार्श्ववर्ती दृश्य आँख-मिचौनी खेलते-से कभी कम, कभी अधिक स्पष्ट दिखाई देते।

श्री केदारनाथ में दो दिन

सूर्यदेव पश्चिम आकाश की ओर अर्द्धांश में झुक चुके थे तथा घड़ी तीन बजने का संकेत कर रही थी। अब हमें श्री केदारनाथजी के दिव्यधाम के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मंदिर से कुछ ही दूरी पर स्थित 'गेस्ट हाउस' के बरामदे में आग जल रही थी तथा श्री भाईजी, जो कुछ ही पूर्व पहुँच चुके थे, अब आग के समीप बैठे सब लोगों के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ अन्तर से और लोग तो आ गये, किन्तु श्री बहनजी और उनके साथ एक-दो भाई अभी तक नहीं पहुँचे थे। जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा था, गत रात्रि की कुटिल ऋतु के कारण मार्ग की और भी बढ़ी हुई दुरूहता का ध्यान करते हुए उनके न आने से चिन्ता बढ़ती जा रही थी। सब लोगों की दृष्टि पथ

की ओर लगी थी। प्रायः आध घण्टे पश्चात् तपस्या और त्याग की प्रतिमूर्ति-सी श्री बहनजी आती दृष्टिगोचर हुईं। पैदल यात्रा के प्रारम्भ से ही उन्होंने किसी सवारी को स्पर्श करना भी अस्वीकार कर दिया था और सारी यात्रा पैदल चलकर तय की थी। इतना ही नहीं, जब वे इतनी दूर चलकर कठिन पहाड़ी मार्गों को पार करती हुई पड़ाव पर पहुँचतीं, तो उस समय भी उन्हें अपने से अधिक दूसरों का ही ध्यान रहता। थकी होते हुए भी उनके चेहरे पर प्रसन्नता खेलती रहती। सब लोगों का भोजन भी वे प्रायः स्वयं ही बनातीं। कहीं लकड़ी गीली होती, धूआँ उठता रहता, आँखों में आँसू आ जाते, किन्तु अम्लान-मुख वे अपना काम पूरा करके ही उठतीं और सब लोगों के साथ ही भोजन करतीं। जितने दिनों यह यात्रा चलती रही, उनके तपस्यानुरूप कार्यक्रम का सातत्य अटूट ही रहा। मुझे तो इस यात्रा में सर्वदा ऐसा प्रतीत होता रहा, जैसे मैं एक असीम अपनत्व की छाया में निरन्तर रह रही हूँ। अन्य जो लोग साथ थे, उनके अनुभव भी भिन्न नहीं थे।

जब सब लोग निवास-स्थान पर पहुँच चुके, तब श्री भाईजी मन्दाकिनी स्नान के लिए चले। उनके साथ श्री ओमप्रकाशभाई तथा अन्य दो-तीन भाई थे। आकाश मेघाच्छन्न था तथा ठण्ढ का तो कहना ही क्या था। मन्दाकिनी के जल की परतें अपने ऊपर जमते हुए हिम से मानो स्वयं ही अकड़ी जा रही थीं। ऐसे समय स्नान के अनिर्वचनीय आनन्द का वर्णन तो मैं कर नहीं सकती, क्योंकि मै ईश-कृपा से उस अनुभव से वंचित ही रही। स्नान कर श्री भाईजी जब तक वापस आये, तब तक पास की

दूकान से ही गरम-गरम भोजन बनकर आ गया था। आज विलम्ब हो जाने के कारण भोजन की व्यवस्था बाहर से ही कर ली गयी थी। पहाड़ों पर धरती के धूल-गुबार नहीं हुआ करते, अस्तु। इधर की अच्छी दूकानों में बनी भोजन की वस्तुएँ अपेक्षाकृत स्वच्छ तथा पवित्र रहा करती हैं।

श्री केदारनाथ-धाम समुद्रतल से प्रायः १२,००० फीट (११,७६८) की ऊँचाई पर अनावृत हिम-शृङ्गों के सान्निध्य में एक विशाल प्राङ्गण जैसा परिलक्षित होता है, जिसके एक ओर मन्दाकिनी की अल्हड़ धारा क्रीडा करती हुई सुशोभित होती है तथा दूसरी ओर ऊँची पर्वत-शृङ्खला आकाश को छूती चली गयी है। यहाँ की बस्ती काफी बड़ी है, पक्के मकान भी बहुत हैं। ग्रीष्म ऋतु में जब यात्रियों की संख्या अधिक रहती है, तब ये सब भरे रहते हैं। वर्ष के पाँच महीने (कार्तिक शुक्ल एकादशी से वैशाख शुक्ल द्वितीया तक) अधिक शीत के कारण यहाँ के सब लोग नीचे जाकर रहते हैं। मन्दिर का पट बन्द रहता है और तब तक श्री केदारनाथजी की शृङ्गार-मूर्ति की पूजा, सेवा नीचे ऊषी मठ में हुआ करती है। उन महीनों में यहाँ इतना हिम-पात होता है कि रहना असम्भव ही है। कहते हैं कि पट बन्द करते समय मंदिर में जो दीपक सजाकर रखा जाता है, वह पाँच मास पश्चात् पट खोलते समय भी जलता हुआ मिलता है।

आज अतिकाल हो जाने के कारण कल प्रातःस्नान के पश्चात् ही दर्शन के लिए जाने का निश्चय हुआ। घने बादलों के कारण दिन का धूमिल प्रकाश धीरे-धीरे निशा के अंधकार में परिणत हो गया और उसमें समस्त दिशाएँ विलीन-सी हो गयीं। आज

मेरा जीवत्पुत्रिका का निर्जल व्रत था। यह भी शुभ संयोग ही था कि ऐसे पुण्य-धाम में मेरा यह व्रत पड़ा था। यात्रा की कठिनाइयों को देखते हुए श्री भाईजी तथा श्री बहनजी ने मुझे उपवास करने से मना किया था, किन्तु मैं असमर्थ थी। अब मुझे चुप-चाप सो जाने की आज्ञा मिली। बंद द्वार के अभ्यन्तर जलती हुई अँगीठी सुखदायी लग रही थी और उसका हल्का सुनहला प्रकाश कमरे के फर्श पर फैल रहा था। चारों ओर नीरवता छा रही थी, केवल बीच-बीच में दूर से आते कुछ स्फुट शब्द सुनाई पड़ जाते। समस्त विश्व को अपने वक्षस्थल में समेटती रात धीरे-धीरे गाढ़ी होती जा रही थी और यदा कदा आते हुए वे शब्द भी अब बन्द हो चुके थे।

२८ सितम्बर, शुक्रवार

ब्राह्म मूहूर्त की पवित्र वेला में श्री बहनजी के पुकारने से मेरी नींद टूटी। मध्य रात्रि से तूफानी वर्षा हो रही थी, किन्तु अब वातावरण कुछ शान्त हो चला था। मै शीघ्र ही स्नान करके बाहर आयी, तो देखा कि श्री बहनजी मोसम्बी का रस निचोड़ रही है। मैंने समझा, सम्भवतः श्री भाईजी रस लेंगे। मैने भी श्री बहनजी का हाथ बँटाना चाहा, किन्तु उन्होंने रोका। दो मिनट के उपरान्त वह रस का गिलास जब उन्होंने मेरी ओर बढ़ाया, तब तो मैं अवाक् रह गयी। अब सभी बातें मेरे सामने स्पष्ट थीं। मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के लिए इतना ममत्व! कैसे ढो पाऊँगी मै इतना स्नेह! कैसी उदारताभरी ममता पायी है उन्होंने। उपवास किया मैंने और चिन्ता हुई उन्हें। यह स्नेहपूर्ण स्मृति अमूल्य निधि के रूप में जीवनपर्यन्त मेरे मन में संचित रहेगी।

प्रभात-काल का प्रकाश अब फैलने लगा था। आकाश अपेक्षाकृत स्वच्छ था और सूर्य की रेशमी किरणें हिम-शृङ्गों की धवल सुषमा को अनुरञ्जित कर रही थीं। ऐसा लगता था, मानो रात्रि की भीषण वर्षा के उपरान्त अब प्रकृति शान्त होकर मुस्कुरा रही थी। कुछ और रुककर माताजी, दीदी और मैं श्री केदारनाथजी के दर्शन को चली।

मंदिर के मुख्य-द्वार पर श्री नन्दीजी की एक बड़ी मूर्ति है तथा दाहिने हाथ की ओर श्री गणपति विराजमान हैं। सभामंदिर में पाँचों पाण्डवों, द्रौपदी, कुन्ती, लक्ष्मी एवं सरस्वती महारानी के साथ श्रीकृष्ण भगवान् की मूर्ति भी स्थापित है। मुख्य मंदिर में दाहिनी ओर (शिवजी की बायीं ओर) श्री पार्वतीजी तथा मध्य में श्री केदारनाथजी विराजमान है। विधिपूर्वक षोड़शोपचार पूजा हुई। तत्पश्चात् सभा-मंडप में बने दूसरे द्वार से श्री कल्पेश्वर महादेव का दर्शन करने बाहर आये।

भेदासुर का अन्त

अब तक श्री भाईजी और श्री बहनजी भी मंदिर के पास आ चुके थे। वहीं, मंदिर के अग्रभाग में चबूतरे पर उनके स्वागत-सभा का प्रबन्ध था। पण्डों की ओर से संस्कृत के श्लोकों में उनका अभिनन्दन किया गया, जो इसी अवसर के लिए रचे गये थे। इसके उपरान्त श्री भाईजी ने श्री केदारनाथजी के प्रति अपनी भक्ति-भावना प्रदर्शित करते हुए कहा कि वे सर्वोदय की पुष्पाञ्जलि लेकर श्री केदारनाथजी के चरणों में समर्पित करने आये हैं। भारत जैसे धर्म-प्राण देश से ही सर्वोदय का प्रकाश

फैले, यह जितना स्वाभाविक है, उतना ही महत्त्वपूर्ण भी। मानवता के हित के लिए सर्वोदय का क्या मूल्य है, इन सबकी उन्होंने सरल व्याख्या की और बताया कि विश्व में सुख और शान्ति का राज्य तो तभी स्थापित हो सकता है, जब घर-घर में सर्वोदय की भावना साकार हो उठे। उनके भाषण की समाप्ति पर श्री गंगाधर मठाणी ने उपस्थित लोगों से यह निवेदन किया कि श्री भाईजी और श्री बहनजी मंदिर में तभी जायेंगे, जब हरिजन भाइयों को प्रवेशाधिकार मिलेगा। यह सुनते ही एक पण्डे ने इसका घोर प्रतिवाद किया, जिसे देखकर श्री भाईजी को बहुत दुःख हुआ। फिर भी उन्होंने शान्त स्वर में लोगों को समझाते हुए जो कुछ कहा, उसका सार यह था कि यदि हरिजन मंदिर में नहीं जा सकते, तो वे भी कैसे जा सकते है। चूँकि वे अपने को हरिजन से श्रेष्ठ मानने का अहङ्कार नहीं करते, इसलिए जिन मंदिरों में हरिजनों का प्रवेश निषिद्ध हो, उनमें उनका प्रवेश भी वर्जित ही मानना चाहिए। उन्होंने कहा कि वे तो वहाँ से ही महान् केदारनाथजी का दर्शन पा रहे हैं और उस स्थान से ही उन्हें प्रणाम करके लौट जायेंगे। लेकिन यदि लोगों ने इस भेदासुर का अन्त नहीं किया, तो स्वयं उन्हें ही पछताना होगा और उसके प्रायश्चित्तस्वरूप एक दिन ऐसा भी आ सकता है, जब कि इन मंदिरों में कोई दर्शन करनेवाला ही न रह जाय। जो अपने ही जैसे मनुष्य हरिजनों को मंदिर में जाने से रोकते है, नहीं जानते कि अपनी इस भेदभरी संकुचित नीति से वे हिन्दू-धर्म जैसे विश्व-धर्म का अपमान कर रहे है और उसके मूल पर ही कुठाराघात कर रहे है।

श्री भाईजी स्वल्प में ही अपनी अन्तर्भावना प्रकट कर भाव-भरित हृदय से सामने ही विराजमान उन श्री केदारनाथजी को प्रणाम कर वापस लौट चले, जो सर्वात्मरूप से समस्त जगत् में व्याप्त हैं और जो मौन रहकर ही मानो इस भेदभाव-पूर्ण भ्रान्त धारणा को मिटाने के प्रति अपनी मूक सम्मति जता रहे हों। मैं देख रही थी कि उपस्थित लोग भी इस मनोवृत्ति के अनौचित्य को मन-ही-मन स्वीकार रहे थे, जिसकी छाप उनके पश्चात्तापभरे मुखों पर स्पष्ट अङ्कित थी, किन्तु कमी थी उस साहस की, जो उन्हें उचित मार्ग पर आरूढ़ होने के लिए प्रेरित करती। पीछे से कुछ पण्डे श्री भाईजी को वापस लौटाने के लिए आये और उनसे साग्रह अनुरोध करते रहे कि वे चलकर दर्शन कर लें, किन्तु भाईजी अपनी बात पर अटल रहे।

जिस संकुचित मनोवृत्ति के कारण देश परतंत्र बना, करोड़ों की संख्या में लोग धर्म त्यागने को विवश हुए और उसीके फल-स्वरूप, अभी बहुत दिन नहीं हुए, जब मातृ-भूमि का विभाजन हुआ, रक्त की नदी बही एवं विगत वर्षों में दिवंगत डॉ० अम्बेड-कर के नेतृत्व में तथा उसके पश्चात् भी लाखों हरिजनों ने धर्म-परिवर्तन किया और कर रहे हैं; आश्चर्य है कि हम उसी दुर्नीति को आज भी ढो रहे है। हिंदू-धर्म जैसे महान् मानव-धर्म के लिए यह बहुत बड़ा कलंक है, जिसे हम चन्दन मानकर धारण किये हुए हैं। सोचने की बात है कि अपने ही धर्म में अपने ही देवी-देवता के दर्शन का भी अधिकार न हो, यह कैसी बात है। यदि यह सब हमारे सामने ही न होता रहता, तो वस्तुतः इस पर विश्वास ही नहीं होता कि किसी धर्म में ऐसी भी प्रथा

हो सकती है। किन्तु अपने जन्मजात संस्कारों के कारण हमें यह सब स्वाभाविक लगता है। कर्मकाण्ड के उन दिनों में, जब त्रिसंध्या में चूकनेवाला ब्राह्मण भी शीघ्र ही ब्राह्मणत्व से पतित होकर चाण्डाल की संज्ञा ग्रहण करता था, भले ही योग्यता पर आधारित वर्णगत अधिकार का कुछ महत्त्व हो। चिकित्सालय में वैद्य का अधिकार निर्विवाद है, उसमें विवेक-दृष्टि है। किंतु यह नहीं कि डॉक्टर का पुत्र इंजीनियर हो, तो वह भी उसी अधिकार का प्रयोग करेगा। आज जो हो रहा है, उसके पीछे तो प्रत्यक्ष जड़वादिता और अन्धविश्वास का ही राज्य है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से घृणा करे, इससे बढ़कर क्या पाप है। अपने को ऊँचा और दूसरे को नीचा समझना, यह उपदेश तो किसी 'धर्म' का नहीं हो सकता। भगवान् और मनुष्य के मध्य में कोई दूसरा मनुष्य व्यवधान बनकर खड़ा हो, यह क्या भगवान् को सहन होगा? आज का यह युग तो स्वयं भगवान् का युग है, उनकी अहैतुकी कृपा का युग है। 'हरि को भजे सो हरि का होई', साक्षात् हरि का ही वह हो जाता है। और वह भी 'भाव, कुभाव, अनख, आलस हूँ।' यहाँ कोई रुकावट नहीं, कोई बंधन नहीं। जो भगवान् के सामने गया, वह पवित्र हुआ। ऐसे उन्मुक्त भागवत-धर्म के प्रतिष्ठापक व्यास आदि महर्षियों ने एवं आधुनिक युग के चतुः आचार्यों तथा अन्य सन्त-महात्माओं ने अपने उपदेशों एवं उदार चरित्रों से यह सिद्ध कर दिया है कि भगवद्-प्राप्ति में ऐसी भेद-भावना को कहीं स्थान नहीं है। रसखान, ताज बीबी, कबीरदास, मलूकदास जैसे भक्तरत्न इसके प्रमाण है। ये सब परधर्मी थे, किन्तु आज हम इनके नाम लेकर गौरव का अनुभव करते हैं। आज समस्त

विश्व में हिंदू-धर्म की जो प्रतिष्ठा हो चली है, वह उसकी उदार हृदयता एवं विश्व-बंधुत्व जैसे महान् आदर्शों के कारण है, न कि अपने ही समान मनुष्यों के प्रति घृणावादिता के प्रचार में।

इसी पवित्र धाम में आज से सहस्रों वर्ष पूर्व प्रेम और समता पर आधारित एक ऐसे दिव्य आख्यान का निर्माण हुआ था, जिसका दृष्टान्त पृथ्वी पर अन्यत्र दुर्लभ है। तब द्वापर समाप्त हो चुका था, आर्तत्राणपरायण भगवान् लीला विसर्जन कर अपने दिव्य धाम में जा चुके थे और उनके विरहताप से व्याकुल होकर पाँचों पाण्डव और द्रौपदी महारानी प्राणोत्सर्ग की कामना से उत्तरापथ की ओर चल पड़े थे। मार्ग में पुण्य-क्षय के साथ ही युधिष्ठिर के अतिरिक्त और सभीका शरीरपात हो चुका था, किंतु फिर भी एक साथी बचा था और वह था घृणा-दृष्टि से देखा जानेवाला श्वान। परीक्षा के उस कठिन काल में स्वर्ग से आये हुए विमान को युधिष्ठिर ने अस्वीकार कर दिया; केवल इसलिए कि विमान-रक्षकों ने श्वान को उस पर चढाने में असमर्थता व्यक्त की। युधिष्ठिर ने स्पष्ट कह दिया कि पहले मेरा यह अनन्य साथी श्वान बैठेगा और तब मै बैठूँगा, अन्यथा ले जाओ वापस इस विमान को। और तभी अकस्मात् 'सत्य' प्रत्यक्ष हो उठा। पुराणों में वर्णित ये गाथाएँ क्या केवल पढने के लिए ही है? क्या अधि-कार है हमें कि हम कहें कि हमारे पूर्वजों के ये चरित्र हैं—हम, जो स्वयं अपने जैसे मनुष्यों से ही समान व्यवहार नहीं कर सकते। जिस दिव्य भावना का उद्घाटन उपर्युक्त प्रसङ्ग में हुआ, कौन जानता है कि वही सत्यानुकृति, वही शक्ति आज भी रंगमञ्च

के पीछे से मानव-मन को जोड़ने की इस क्रिया का संचालन न कर रही हो।

आज की यह घटना स्वर्णाक्षरों में लिखी जायगी। बात जन-मानस पर जम गयी है और उसमें शीघ्र ही अंकुर उगेंगे और तब युगों से वञ्चित, दलित हरिजन भाइयों की तरसती आँखें भी पतितपावन श्री केदारनाथजी के दर्शन से धन्य होंगी। आज एक के दर्शन न करने के प्रभाव से भविष्य में लाखों-करोड़ों को दर्शन मिलेगा, और तब उन अनन्त आँखों से उस एक को जो दर्शन मिलेगा, वह क्या दूसरे को नसीब होगा। और कौन कह सकता है कि आज भी वह दर्शन से वञ्चित रहा, वस्तुतः जो दर्शन उसे मिला, वह तो अतुल है, अलभ्य है, अलौकिक है। उस दर्शन के लिए चर्म-चक्षु नहीं, किन्तु हृदय-चक्षु खुले होने चाहिए।

लौटकर सब लोग निवास पर आये। वातावरण का गाम्भीर्य अभी भी अक्षुण्ण था। ऐसा लगता था, मानो यज्ञ के मध्य में ही यज्ञ-देवता सहसा कृपाप्रसाद वितरित कर पुनः अन्तर्धान हो गये हों और घटना की उस आकस्मिकता से लोगों का मन इतना अभिभूत हो उठा हो कि उसकी यथार्थता ग्रहण करने में ही वह असमर्थ सिद्ध हो रहा हो। कुछ समयोपरान्त भोजन के पश्चात् सब लोग बरामदे में आ बैठे। आग जल रही थी। चित्र, पुस्तक इत्यादि लेकर विक्रेतागण आये हुए थे, जो देखे, खरीदे जा रहे थे। श्री भाईजी कुछ लिखने में व्यस्त थे।

धीरे-धीरे संध्या आयी और विदा हो गयी। अब ठण्ढ बढ़ जाने से सब लोग अन्दर कमरे में आ गये। दीदी आज कुछ विशेष चिन्तित दीखती थीं, उनके घर से कोई समाचार न आया।

था। मेहमान (दीदी के पति) घर पर रुग्ण थे और इस कारण इनका इस यात्रा में आने का निश्चय नहीं था, किन्तु श्री बदरीविशाल की कृपा और उनकी निष्ठा ही उन्हें यहाँ खींच लायी थी। अपने हृदय की खिन्नता को भी वे कदाचित् ही दूसरों पर प्रकट होने देतीं और ईश्वरीय देन के रूप में प्राप्त अपनी शान्त प्रकृति के कारण उसे कुशलतापूर्वक छिपाये रहतीं। उनसे कुछ देर इधर-उधर की बातें होती रहीं। तत्पश्चात् श्री केदारनाथजी के चरणों में मन-ही-मन प्रणाम कर सोने की तैयारी हुई।

श्री केदारनाथ से वापसी

२६ सितम्बर, शनिवार

गुरुवार को हम लोग श्री केदारनाथ पहुँचे थे, अब आज चलने की तैयारी हो रही थी। यहाँ से एक मील दूर गांधी सरोवर है। वहाँ ४ जून १९४८ को संत सुरेन्द्रजी की अध्यक्षता में बापू का अस्थिप्रवाह किया गया था, तभी से उसे यह संज्ञा प्राप्त हुई है। संत सुरेन्द्रजी अब बोधगया समन्वय-आश्रम में रहते है, जिसकी स्थापना श्री विनोबाजी द्वारा गया-सर्वोदय-सम्मेलन के अवसर पर की गयी है। वे हम लोगों के हितैषी हैं। इस यात्रा-वर्णन में श्री द्वारको सुन्दरानी का नाम पहले आ चुका है। ये भी उसी समन्वय-आश्रम में रहते हैं और आश्रम के संचालन में हाथ बँटाते है। इच्छा रहते भी मैं उस सरोवर के दर्शन न कर सकी। साथ ही यहाँ एक फलाहारी बाबा दो वर्षों से निरन्तर रहते आते है। जब सर्वत्र हिम ही हिम होता है और लोग मंदिर बंद कर नीचे चले जाते हैं, उस समय भी ये एकाकी यहीं निवास

करते हैं, उनके भी दर्शन मै न पा सकी। ज्ञात हुआ कि ये महात्मा हमारे नगर के बोधगया मठ के ही रहनेवाले एक संन्यासी है, जो अब यहाँ आ गये हैं।

कुछ देर पश्चात् प्रायः ९ बजे श्री केदारनाथजी को तथा उनके कृपा-मुस्कान से सुसज्जित इस दिव्यपुरी को प्रणाम कर श्री बदरीनाथ-धाम के लिए प्रस्थान किया। यहाँ से २९½ मील दूर नाला चट्टी तक लौटने का वही मार्ग है। वहाँ से श्री बदरिकाश्रम के लिए ऊषी मठ, तुंगनाथ, गोपेश्वर होते हुए एक पैदल मार्ग गया है। किन्तु हम लोग रुद्रप्रयाग तक वापस आकर वहाँ से चमोली, पीपल कोठी के मार्ग से श्री बदरिकाश्रम गये। बीच में ऊषी मठ भी हो लिया। इस मार्ग से अगस्त्य-मुनि में ही मोटर मिल जाती है और पैदल चलने की कुछ बचत हो जाती है। तुंगनाथ तो मार्ग से हटकर बहुत ऊँचाई पर स्थित है, जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है। कुछ यात्री वहाँ जाते हैं, कुछ नहीं भी जाते। मोटर से पीपल कोटि पहुँचकर श्री बदरीनाथजी की केवल २८ मील की पैदल यात्रा रह जाती है। अब पीपल कोटि के आगे भी जोशीमठ तक मोटर-मार्ग बनाने की तैयारी हो रही है, जो वहाँ से दूसरी ओर भारतीय सीमा तक जायगी। आशा की जाती है कि आगामी दो वर्षों में यह मार्ग बन जायगा और श्री बदरिकापुरी के लिए केवल २० मील ही पैदल चलना रह जायगा।

लौटते समय मार्ग में पुष्पों का वही विस्तार पुनः मिला, जिन्हें जाते समय छोड़ गयी थी। ये पुष्प अपने स्थान पर खिलते हैं, मुस्कराते है और सुगन्ध बिखेरते हैं, जब समय आता है,

तो धरती को अपने सुकुमार पटल समर्पित कर उसके वक्ष से लग जाते हैं। आकाश में इसी प्रकार अनगिनत तारे अपने-अपने स्थानों पर स्थित होकर अपनी सौंदर्य-प्रभा से विश्व की शोभा बढ़ाया करते हैं। ये फूल, ये तारे, ये सूर्य, चन्द्र, क्या एक ही सूत्र में बँधे इस अनन्त विश्व की अखण्ड एकता का जयघोष करते प्रतीत नहीं होते ? अपनी-अपनी स्थिति पर संतुष्ट, तृष्णा की दुःसह ज्वाला से परे इनका जीवन हम मनुष्यों के कामना-दग्ध एवं भेदभावपूर्ण हृदय के लिए एक सजीव शिक्षा ही है। प्रकृति की चित्रित पुस्तिका का यह पृष्ठ कितना अर्थपूर्ण है।

अब गौरीकुण्ड समीप आ गया था। प्रायः १२ बजते न बजते वहाँ आ पहुँचे। यहाँ पहुँचने के कुछ पूर्व पुनः वर्षा आरम्भ हो गयी थी, जो दिनभर होती रही।

३० सितम्बर, रविवार

श्री केदारनाथ आते समय त्रियुगी नारायण होकर गौरीकुण्ड आये थे, उधर से ५½ मील अधिक चढ़ना-उतरना होता, अतः नीचे के सीधे मार्ग से ही नारायण कोटि के लिए चले। प्रायः १२ बजे धरासू चट्टी पहुँचे। वहाँ से भोजनोपरान्त रामपुर, फाटा होते हुए ५ बजे संध्या समय व्योंग चट्टी पहुँचे। व्योंग चट्टी से २ मील इधर ही श्री महिषासुरमर्दिनी भगवती दुर्गा का प्राचीन मदिर है। कहते है कि इसी स्थान पर देवी ने महिषासुर का संहार किया था। यहाँ लोहे का एक बड़ा झूला लगा हुआ है। उस पर झूलकर यात्री श्री केदारनाथजी की यात्रा को सफल समझते हैं।

आज की सम्पूर्ण पैदल यात्रा १३ मील की हुई थी। लोग कुछ अधिक थक गये थे, किन्तु हिमालय की अमृतवाहिनी शीतल वायु का स्पर्श पाकर वह क्लांति स्वयं ही दूर हो जाती है।

उत्तराखण्ड विद्यापीठ

१ अक्तूबर, सोमवार

प्रातः समय ब्योंग चट्टी से यात्रा आरम्भ हुई। २ मील नीचे नाला चट्टी में एक सर्वोदय-सभा हुई। यहाँ से आगे एक स्थान पर शङ्कर तथा नारायण भगवान् के मन्दिर पास ही पास बने हुए हैं। साथ में एक कुण्ड भी है। अब यहाँ से सीधे ऊखी मठ न जाकर आज के पड़ाव उत्तराखण्ड विद्यापीठ के लिए चले, जिसकी स्थापना सन् १९४७ में श्री गंगाधर मठाणी के प्रयास से हुई है। वे तो इस यात्रा में चन्द्रपुरी से ही साथ चल रहे थे। नाला चट्टी से विद्यापीठ का मार्ग आगे जाकर कुछ दूर तक एक उन्नत गिरिखण्ड के ऊपर से होकर गया है, जिसके दोनों ओर उन्मुक्त एवं मनोरम उपत्यकाएँ दृष्टिगोचर होती हैं, जिनमें दूर तक उतरता सीढीनुमा मार्ग नृत्य करता चला गया है।

जब हम लोग विद्यापीठ पहुँचे, उस समय १० बज चुके थे। यहाँ श्री भाईजी के स्वागत में विद्यार्थियों, शिक्षकों एवं जन-साधारण की एक लम्बी पंक्ति व्यवस्थित रूप से अभ्यर्थना के लिए खड़ी थी, जो अपने प्रिय अतिथि का जय-घोष कर रही थी। ध्वजा, तोरण इत्यादि से सुसज्जित उस समस्त विद्यापीठ में असीम उल्लास का सागर उमड़ता दीख पड़ रहा था। सब लोगों की श्रद्धा-सुमनाञ्जलि स्वीकार करते हुए नम्रता की मूर्ति श्री भाईजी निवास-स्थान पर आये।

आज छह दिनों के उपरान्त खुलकर धूप निकली थी। इन दिनों आकाश निरन्तर मेघाच्छन्न ही रहा था, वर्षा भी अधिकतर होती रही थी, अतः धूप बहुत सुहावनी लग रही थी। गीले कपड़े सूखने को डाल दिये गये थे। ऊपर धुला हुआ सुनील गगन सुशोभित था, जिसमें पक्षियों का समूह तैर रहा था। सामने मन्दाकिनी की धारा वेग से बह रही थी, जिसे स्पर्श करते हुए वायु के हल्के झोंके रह-रहकर आते और उसकी सुखमय शीतल अनुभूति शीघ्र ही सिहरन में परिवर्तित हो जाती।

मन्दाकिनी-स्नान के पश्चात् भोजन, विश्राम हुआ। तदुपरान्त २ बजे अपराह्न में श्री मठाणीजी श्री भाईजी को विद्यापीठ लिवा गये। संस्कृत की शिक्षा का यहाँ विशेष आग्रह रखा गया है। यहाँ आयुर्वेद की शिक्षा भी दी जाती है तथा विद्यार्थियों का जीवन सात्त्विक एवं व्यवस्थित बनाने की चेष्टा की जाती है।

यहाँ से मन्दाकिनी के उस ओर १½ मील की चढाई तय कर ऊखी मठ जाने का मार्ग है। जिस समय हम लोग ऊखी मठ पहुँचे, उस समय सूर्यास्त हो रहा था। उस ऊँचाई से उसका दृश्य बड़ा ही सुन्दर दिखाई दे रहा था।

शीतकाल में जब श्री केदारनाथजी के मंदिर का पट बन्द कर दिया जाता है, तब इस ऊषी मठ में ही उनकी शृङ्गार मूर्ति की पूजा होती है। यहाँ पञ्चमुखी केदारनाथ एवं श्री ओङ्कारेश्वर महादेव का स्वर्ण-कलशयुक्त एक सुन्दर मन्दिर है। सभामंडप में आदि बदरी, छोटे मयूर पर चढ़े शंकर-सुवन कार्तिकेय तथा दाहिने बायें देवियों की युगल मूर्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त तुंगनाथ, गौरी पार्वती, अर्द्ध-नारीश्वर, भगवती काली एवं विष्णु भगवान् की

चतुर्भुजी मूर्ति भी स्थापित है। मुख्य मंदिर में पंचमुखी केदारनाथ एवं श्री ओङ्कारेश्वर विराजमान हैं, पार्श्वभाग में श्री गणेशजी सुशोभित है, सामने नन्दी की छोटी मूर्ति है, निकट ही मध्य-महेश्वर की चल मूर्ति है, जिनकी गणना पंच केदार में की जाती है। पुराणों में वर्णित भगवद्भक्त महाराजा मान्धाता की मूर्ति भी स्थापित है। कहते है, प्राचीनकाल में इन्होंने यहाँ कठिन तपस्या की थी। भगवद्भक्ति से मनुष्य भी भगवान् का ही स्वरूप हो जाता है। यही तो उसकी महिमा है।

एक अद्भुत प्रणय

मुख्य मंदिर के अतिरिक्त यहाँ ऊषा देवी का भी एक स्वर्ण-कलश-मण्डित काष्ठ का बना मन्दिर है। ऊषा देवी के ही नाम पर यह ऊषी-मठ विख्यात है। ऊषा-अनिरुद्ध की ललित प्रणय-गाथा का बीजारोपण जगन्माता पार्वती के वरदानस्वरूप इसी स्थान में हुआ था। बाणासुर श्री शिवजी का बड़ा भक्त था। उसकी पुत्री ऊषा श्री पार्वतीजी से विद्यालाभ करने के लिए यहाँ रहा करती थीं। जब पढना समाप्त हो चुका और ऊषा की अवस्था विवाह-योग्य हुई, तब उन्होंने सुयोग्य पति की कामना से जगन्माता की आराधना प्रारम्भ की। प्रसन्न होकर भगवती ने उन्हें स्वप्न द्वारा परम सुन्दर वर-प्राप्ति का वरदान दिया। कुछ समयोपरान्त उन्होंने स्वप्न में श्रीकृष्ण भगवान् के पौत्र श्री अनिरुद्धजी की पीताम्बरधारिणी मनोहर छवि देखी और उन्हें अपना हृदय समर्पित कर बैठीं। जगने पर स्वप्न में देखे हृदय-देवता की विह्वलताभरी खोज आरम्भ हुई। ऊषा की सखी थीं, चित्र-

लेखा। उनकी चित्र-कला विचित्र थी। उन्होंने विश्व के समस्त सुन्दर राजकुमारों के चित्र बनाकर दिखाने आरम्भ किये। जब यदुवंशावतीर्ण भगवान् कृष्ण का चित्र बना, तो अपने चितचोर के मुख की साम्यता पाकर वे किंचित् लज्जित हो उठीं। अन्त में जब अनिरुद्धजी का चित्र बना, तब उन्होंने उसे तत्क्षण पहचान लिया और आनन्दविभोर हो उठीं। चित्रलेखा में ध्यान के द्वारा अनदेखे व्यक्तियों का चित्र बना लेने की सिद्धि के अतिरिक्त एक और भी शक्ति थी। वे आकाशमार्ग से जहाँ चाहें, आ-जा सकती थीं। इतना ही नहीं, वे अपने साथ जिसे चाहें, उड़ा भी ले जा सकती थीं। एक सुन्दर रात्रि में वे भगवान् की परम पुनीत द्वारका-पुरी जा पहुँचीं और जब सब लोग निद्रा-विमग्न थे, तब ईश्वरेच्छा से श्री अनिरुद्धजी को शय्या समेत ही शोणितपुर ले आयीं।

ऊषा ने वीणा बजाकर श्री अनिरुद्धजी को जगाया। वे भी ऊषा को स्वप्न में उसी दिन अपनी हृदय-देवी मान बैठे थे, जब ऊषा ने उन्हें देखा था। किसीको इस विचित्र प्रणय का पता न था और ऊषा के उस एकान्त आवास में युगल प्रेमी आनन्द से अपना दिन व्यतीत कर रहे थे। कुछ दिनों पश्चात् बाणासुर को अपनी पुत्री के इस गुप्त विवाह का पता चला और उसने क्रुद्ध होकर अनिरुद्धजी को बंदी बना लिया।

उधर द्वारका में अनिरुद्धजी को न पाकर खोज मची थी। अन्ततः श्री नारदजी से उनके बंदी किये जाने तक का समस्त वृत्तान्त जानकर श्रीकृष्ण भगवान् ससैन्य बाणासुर की राजधानी शोणितपुर आ पहुँचे। अद्भुत युद्ध हुआ, जिसमें भक्त का पक्ष लेकर शिवजी को भी युद्ध में उतरना पड़ा। इस ललित गाथा के

प्रसंग में इस विचित्र युद्ध का वर्णन पुराणों की भावपूर्ण शैली में विस्तार से किया गया है, जिसके पढ़ने-सुनने से रोग-मुक्ति एवं भगवद्भक्ति की प्राप्ति बतायी गयी है। अन्त में बाणासुर की सहस्र भुजाओं में केवल दो भुजा रखकर—उसे गर्वोद्धत असुर से साधारण मनुष्य बनाकर, अपने पौत्र एवं पौत्र-वधू को लेकर भगवान् द्वारकापुरी लौट आये।

भगवान् के पहुँचने के पूर्व ही यह मंगल-समाचार द्वारका-धाम में पहुँच चुका था। वहाँ ऊषा-अनिरुद्ध के मंगलमय विवाह का दिव्य समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। ऊषा-मंदिर में ऊषा-अनिरुद्ध के अतिरिक्त उनकी प्रिय सखी चित्रलेखा की मूर्ति भी सुशोभित है, जो इस प्रसंग की पोषिका है।

यहाँ ऊषी-मठ में जलपान का भी आयोजन था। तत्पश्चात् एक घण्टे तक सर्वोदय-सभा हुई। यहाँ के निवासियों की ओर से इस अवसर पर सर्वोदयविषयक एक प्रहसन दिखाया जानेवाला था; किन्तु तब लौटने में अधिक विलम्ब हो जाता और इसके अतिरिक्त एक ऐसा ही आयोजन विद्यापीठ में रखा गया था, अतः निश्चय हुआ कि यहाँ के प्रहसनकर्ता भी विद्यापीठ में ही आकर सम्मिलित रूप से प्रहसन करेंगे। रात्रि का अन्धकार तो अभी ही फैल चुका था और मार्ग में सीधा उतार भी था। किन्तु 'पेट्रोमैक्स' की व्यवस्था रहने के कारण असुविधा न हुई।

विद्यापीठ में सर्वोदयविषयक प्रहसन तथा छाया-नृत्य बहुत ही सफल रहा। ऊषी-मठ के प्रहसनकर्ता भी उसमें सम्मिलित हो गये थे। टिहरी-गढ़वाल के सर्वोदय-कार्यकर्ता श्री कामेश्वर भाई की पत्नी प्रेम बहन तथा गढ़वाल के भूदान-संयोजक, पूर्व-

परिचित श्री मानसिंह रावत की स्त्री शशि बहन ने भी छाया-नृत्य में भाग लिया था। दोनों की ही कला-साधना सराहनीय थी। ये युगल दम्पति आरम्भ से ही इस यात्रा में साथ चल रहे थे।

२ अक्तूबर, मंगलवार

आज पूज्य बापू का जन्म-दिवस होने के कारण प्रातःकाल का कार्यक्रम विशेष प्रार्थना से आरम्भ हुआ। मुन्नी ने बापू का प्रिय भजन 'वैष्णव जन तो तेने कहिये' सुनाया। प्रार्थना के पश्चात् जलपान हुआ और प्रायः ६ बजे चन्द्रपुरी के लिए चल पड़े। लगभग १२ बजे वहाँ पहुँचकर भोजन-विश्राम हुआ, तदुपरान्त पुनः यात्रा आरम्भ हुई। ४ बजे अगस्त्यमुनि आ गये। यहाँ आकर श्री केदारनाथजी की पैदल यात्रा समाप्त हुई।

अब यहाँ से मोटर से एक घण्टे में आज के रात्रि के पड़ाव रुद्रप्रयाग पहुँचे। वहाँ एक विशाल सर्वोदय-सभा आयोजित थी। देर तक सभा चलती रही। तत्पश्चात् यहाँ भी भूदानविषयक एक प्रहसन दिखाया गया। अब तक की यात्रा से यह प्रत्यक्ष दीख रहा था कि श्री भाईजी के आगमन से गढ़वाल में एक अद्भुत उत्साह की लहर उमड़ आयी है। स्थान-स्थान पर लोग उनके स्वागत में अपने हृदय बिछाये दे रहे थे और उनसे इस नयी क्रान्ति के विषय में कुछ सुनने के लिए उत्सुक दीखते थे। श्री भाईजी थकना तो कदाचित् जानते ही नहीं। प्रायः पड़ाव पर देर से पहुँचना होता, फिर भी उस ठंढ में, खुले में देर-देर तक सभा होती। घण्टे पर घण्टे बीत जाते और वे सरल हृदय गढ़वाली भाइयों को बड़े प्रेम और सहिष्णुता से सर्वोदय का मानव-संदेश सुनाते रहते। लोग भी दूर-दूर के गाँवों से इन सभाओं में आये

होते, उन्हें लौटकर बीहड़ मार्गों से घर जाने की भी चिन्ता होती; फिर भी बड़ी शान्ति से वे श्री भाईजी का भाषण सुनते। अभी गढ़वाल में सर्वोदय की दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है, फिर भी श्री भाईजी के आगमन से जो वातावरण बना है, उससे भूदान तो क्या, ग्रामदान भी सुलभ हो सकता है और ध्यान दिया जाय, तो यहाँ सर्वोदय-विचार घर-घर में पहुँच सकता है।

श्री बदरीनाथ की ओर

३ अक्तूबर, बुधवार

प्रातःकाल की शुभ वेला में श्री बदरीनाथ के मार्ग में आज के पड़ाव पीपलकोटि के लिए चले। रुद्रप्रयाग से पीपलकोटि ४६३ मील दूर है। मार्ग में कुछ देर कर्णप्रयाग में रुके, जो वहाँ से १८ मील की दूरी पर पिंडरगंगा और अलखनन्दा के संगम पर अवस्थित है। रुद्रप्रयाग से हम लोग मंदाकिनी से विदा लेकर अब अलखनन्दा के किनारे चल रहे थे। संगम-स्थल पर ही शिवजी का एक मंदिर और एक अश्वत्थ वृक्ष है। बहुत ही शान्त और सुन्दर स्थान है, जो मन को बरबस मोह लेता है। पास में ही महाभारत-प्रसिद्ध दानवीर कर्ण का मंदिर है। ऐसा कहा जाता है कि यहाँ उन्होंने श्री परशुरामजी से शस्त्र-विद्या सीखने के लिए तप किया था।

कर्णप्रयाग से चलकर नन्दप्रयाग पहुँचे। यहाँ अलखनन्दा और नन्दगंगा का संगम हुआ है। कहते हैं कि द्वापर में नन्दजी ने श्री बदरीनाथ की यात्रा में यहाँ आकर यज्ञानुष्ठान किया था। यहाँ श्री नन्दजी और उनके लाड़ले श्री गोपाल का मंदिर है।

बस्ती घनी है। यहाँ से कुछ दूर आगे चमोली है। प्रायः ११ बजे वहाँ पहुँचे। गत वर्ष चमोली तक ही मोटर-मार्ग था, किन्तु अब इसके आगे पीपलकोटि तक मार्ग बन गया है। आज दिन का पड़ाव चमोली में ही था। ४ बजे संध्या समय यहाँ सर्वोदय-सभा हुई। सभा के पश्चात् ७½ मील दूर पीपलकोटि के लिए चले। छह बजे वहाँ पहुँच गये। यहाँ भी सभा का आयोजन था। प्रायः ८½ बजे तक सभा चलती रही। आज का रात्रि-पड़ाव पीपलकोटि में ही था। अब यहाँ से श्री बदरीकाश्रम के लिए ३८ मील पैदल मार्ग रह जाता है।

४ अक्तूबर, गुरुवार

श्री बदरीनाथ की पैदल यात्रा आज से आरम्भ हुई। पीपलकोटि से ४ मील दूर गरुड़गंगा है। यहाँ पहाड़ी झरने के रूप में गरुड़-गंगा अवतरित होती है और कुछ दूर आगे जाकर अलखनन्दा से मिल जाती हैं। यहाँ गरुड़जी का मंदिर है। इसके दो मील आगे टंगणचट्टी आती है। यहाँ पास में गणेश-कुण्ड है। भोजन-विश्राम के लिए कुछ देर रुककर पुनः प्रस्थान हुआ और पातालगंगा होते हुए यहाँ से ४ मील दूर गुलाबकोटि पहुँचे। अभी संध्या होने में कुछ विलम्ब था। आज की पद-यात्रा १० मील की हुई थी। मार्ग में यहाँ-वहाँ स्वागत एवं छोटी-छोटी सभाओं का तारतम्य तो बना ही था।

जोशी मठ

५ अक्तूबर, शुक्रवार

गुलाबकोटि से दो मील दूर कुमारचट्टी (हेलंग) है। वहाँ से ५ मील दूर 'सिंह-धार' होते हुए प्रातः दस बजे जोशी

मठ पहुँचे। गुलाबकोटि से जोशी मठ ८ मील एवं हरिद्वार से १६२½ मील है। यह इधर के प्रमुख स्थानों में से एक है। बस्ती बड़ी है। यात्रियों के लिए अनेक धर्मशालाएँ है। श्री बदरीनाथजी का गेस्ट-हाउस तथा डाक-बँगला भी है। अस्पताल, डाक-तार-घर, स्कूल सभी है।

यहाँ स्वर्ण-कलश-मंडित श्री नारायण भगवान् का मुख्य मंदिर है, जिसमें उद्धव इत्यादि भक्तगणों से परिवेष्टित भगवान् की मनोरम श्यामवर्णमूर्ति विराजमान है। शीतकाल में श्री केदारनाथजी के ही समान जब श्री बदरीनारायण का पट बन्द हो जाता है, तब उनके शृङ्गारमूर्ति की पूजा, सेवा यहीं होती है। बाहर परिक्रमा में श्री द्रौपदी महारानी है। पास ही श्री गणेशजी, श्री शालिग्रामजी, श्री नृसिंहजी तथा नवदुर्गा के मंदिर हैं। सामने गरुड़स्तम्भ है। एक निर्मल जल का कुण्ड भी समीप ही है, जिसमें नृसिंह-धारा तथा दण्ड-धारा नाम की दो धाराएँ गिरा करती हैं। श्री बद्रीनाथजी का प्रधान कार्यालय भी यहीं है। श्री शङ्कराचार्यजी से इस स्थान का सम्बन्ध तो प्रसिद्ध ही है।

जोशी मठ का धार्मिक दृष्टि के अतिरिक्त सीमान्त नगर होने के कारण भौगोलिक दृष्टि से भी अपना विशेष महत्त्व है। यहाँ से २५ मील दूर नेती वैली होकर भूटान और तिब्बत को मार्ग गया है, जो इधर भारत की सीमा में अंतिम गाँव होने के साथ ही उन देशों के मध्य भारत का मुख्य व्यापार-केन्द्र है। अस्तु, इधर भूटानी और तिब्बती बहुत देखने में आते है। ये लोग कस्तूरी, शिलाजीत, ऊन और ऊन की वस्तुएँ, हींग इत्यादि बेचने को लाते है और उनके बदले यहाँ से अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ

खरीदकर ले जाते हैं। इनमें पर्दा बिल्कुल ही नहीं है। सभी मेहनती और हृष्ट-पुष्ट होते हैं तथा प्रसन्न रहते हैं। शिक्षा का नितान्त अभाव है। सभी बुद्धधर्मावलम्बी हैं, किन्तु इनकी धार्मिक विधियों में हिन्दू-धर्म की छाप भी स्पष्ट दीखती है। इनकी चाय भी विचित्र होती है। उसमें दूध के बदले मक्खन और चीनी के स्थान पर नमक डालते हैं और पीने के पहले लकड़ी की मथानी से खूब मथते हैं।

जोशी मठ से १५ मील उत्तर-पूर्व श्री बदरीनाथ के मार्ग में यहाँ से १० मील आगे अलखनन्दा की सहायिका भिंडर नदी के ऊपरी जल-प्रवाह के समीप एक प्रसिद्ध 'पुष्प-उपत्यका' (फ्लावर वैली) है, जिसमें वर्षा ऋतु के व्यतीत होते ही ढाई सौ से भी अधिक प्रकार के रंग-बिरंगे पुष्प खिलते हैं, जिनकी शोभा देखते ही बनती होगी। भिण्डर के किनारे-किनारे वहाँ जाने की कष्ट-साध्य पगडण्डी है, जो कहीं प्रकट होती है और कहीं वनान्तर में खो जाती है। हिमानी जल के झरने 'उपत्यका' की इस उपजाऊ भूमि को सिंचित करते रहते है और ऋतु आते ही भू-गर्भ में छिपे पुष्प इस प्रकार मुस्करा उठते है, मानो किसीने जादू की छड़ी से स्पर्श कर दिया हो। इसके पास ही गुरु गोविंदसिंह के नाम से सम्बद्ध 'हेम-कुण्ड' है। कहते है कि वहाँ इन्होंने पूर्व-जन्म में तपस्या की थी। इस पुष्प-उपत्यका में मनोरम स्थान पर बना हुआ एक सुन्दर फॉरेस्ट बँगला भी है, जो खाली ही पड़ा रहता है। मन में आकर्षण होते हुए भी इस यात्रा में वहाँ जाना सम्भव न हुआ। श्री भाईजी की भी वहाँ जाने की बड़ी इच्छा

थी और उन्होंने कहा भी कि अवकाश मिला, तो अगली यात्रा में इसे देखूँगा।

हम लोगों के रहने का प्रवन्ध श्री बदरीनाथजी की अतिथि-शाला में था। उसके सामने ही एक खुला भू-भाग है, जिसमें अन्य स्थानों की भाँति ही श्री भाईजी के पहुँचने के पूर्व से ही विशाल जन-समुदाय एकत्र था। अतः आते ही सभा हुई। तत्पश्चात् भोजन-विश्राम हुआ। सौभाग्य से आज आश्विन नवरात्र का प्रथम दिवस था। अस्तु, संध्या समय श्री दुर्गाजी के दर्शन का भी अच्छा सुअवसर मिला। रात्रि में भगवान् के शृंगार और आरती उतारे जाने का दर्शन भी बड़ा सुन्दर था।

६ अक्तूबर, शनिवार

नियमानुसार प्रातः यात्रा आरम्भ हुई। गुलाबकोटि से ही चीड़ तथा देवदारु का घना जंगल आरम्भ हो गया था। मार्ग में उसीकी सुगन्ध फैली हुई थी। चीड़ का कठफूल देखने में काठ के सुन्दर खिलौने जैसा लगता है। चीड़ की हवा स्वास्थ्यवर्धक मानी जाती है, विशेषतः यक्ष्मा के रोगियों के लिए। इसीलिए जहाँ कहीं 'सेनोटोरियम' बनाये जाते है, वहाँ यथासम्भव चीड़ वृक्ष की बहुलता का ध्यान रखा जाता है। चीड़ के वृक्ष बहुत लम्बे होते है। इसकी लकड़ी साफ और सुन्दर होती है, मजबूत भी कम नहीं होती। इधर नमी से बचने के लिए प्रायः लकड़ी के ही फर्श बनाये जाते हैं। कहीं-कहीं तो सारा घर ही लकड़ी का बना होता है, जिनमें मुख्यतः इन्हीं लकड़ियों का उपयोग किया जाता है। देवदारु के वृक्ष चीड़ की अपेक्षा लम्बे कम और सघन होते है। इसके छोटे-छोटे गुलाब जैसे ही कठफूल बड़े सुन्दर

दीखते हैं। पँखुड़ियाँ भी ठीक गुलाब के समान ही होती हैं। रंग तो काठ का ही होता है, किन्तु सुगन्धि बहुत होती है। जैसा कि देवदारु नाम से ही प्रत्यक्ष है। यह वृक्ष अति पवित्र माना जाता है और हम हिन्दुओं के छोटे-बड़े हवन-यज्ञों में इसकी पवित्र समिधा एक आवश्यक वस्तु होती है। हम लोगों की ओर देवदारु चन्दन के समान ही मूल्यवान् वस्तु मानी जाती है, किन्तु इधर उसे सहज ही ईंधन के काम में लाते हैं। उसकी दिव्य सुगन्धि से भरे वातावरण में किसी ग्रामीण की एकाकी कुटिया हम नीचे से आनेवालों को अनायास ही एक स्वप्न-लोक में खींच ले जाती है।

इधर पहाड़ों पर अनेक दिव्य वनस्पतियों के साथ ही एक बिच्छू-पौधा भी होता है। जैसा नाम, वैसा गुण। पत्ते और डालों में महीन काँटे होते हैं। छूते ही जलन पैदा होती है। कहीं-कहीं तो इसके जंगल बिछे होते है। चलते समय कभी छू जाते ही ऐसा लगता है, मानो डंक लग गया हो; किन्तु शीघ्र ही ठीक हो जाता है। इसके पास ही कहीं-कहीं एक चिकने पत्ते का पौधा होता है। कहते है कि उसका रस लगा लेने से जलन जाती रहती है। उधर के लोग सिर में अथवा किसी अंग में पीड़ा होने पर बिच्छू के पत्ते लगाते है, जो मानो 'पेन-बाम' का काम करते है।

जोशी मठ के तीन मील आगे विष्णुप्रयाग आता है। यहाँ अलखनन्दा और विष्णुगंगा का संगम है। वेग अधिक होने के कारण सगम-स्थल पर स्नान करना अरक्षित है। घाट के ऊपर ही विष्णु भगवान् का मंदिर है। चट्टी छोटी है।

श्री केदारनाथ जाने के मार्ग में जैसे दो-दो, तीन-तीन मील

पर छोटी-बड़ी चट्टियाँ बनी हुई हैं, वैसे ही श्री बदरीनाथ की यात्रा में भी हैं। इनमें भोजन की वस्तुएँ, यात्रियों के टिकने का स्थान तथा आवश्यकता होने पर किराये पर बर्तन, कम्बल इत्यादि भी मिलते हैं। कुछ चट्टियाँ तो बहुत गन्दी होती हैं। यात्री भी कम गन्दे नहीं होते। छोटी जगह, अधिक यात्री, गन्दी आदतें, सभी मिलकर हिमालय के सुन्दर वातावरण को मलिन करते हुए-से प्रतीत होते हैं। सरकारी स्वास्थ्य-विभाग का कार्य भी जैसा होना चाहिए, वैसा नहीं होता। फलस्वरूप कॉलरा इत्यादि रोग प्रायः फैल जाते हैं। यात्रियों की एक आदत यह होती है कि वे जहाँ मिला, वहीं पानी पी लेते हैं। ठण्ढे पानी के सोते देखे और अपनी प्यास बुझा ली। इसीका कुफल यह होता है कि श्री बदरीनाथ से लौटकर लोग प्रायः संग्रहणी जैसे भयकर रोग से ग्रस्त हो जाते हैं। पानी सदा उबालकर पीना चाहिए। जो चाय न पीते हों, वे भी दिन में दो-तीन बार उष्ण जल पीने का नियम रखें, तो इन यात्राओं में अधिक स्वस्थ रह सकते हैं। सभी स्थानो पर तो औषधि भी मिलती नहीं, फिर डॉक्टर कहाँ मिलेंगे ? इसलिए यदि कुछ आवश्यक औषधियाँ भी यात्री अपने साथ रखें, तो उससे उन्हें और दूसरों को भी लाभ हो सकता है।

विष्णुप्रयाग से चलकर प्रायः ११ बजे पाण्डुकेश्वर पहुँचे। नित्य के जैसा ही मार्ग में स्थान-स्थान पर जन-समुदाय एकत्र होकर श्री भाईजी के प्रति अपनी श्रद्धा समर्पित कर रहा था। पाण्डुकेश्वर में भी खासी भीड़ थी। ऐसे स्थानों पर सर्वोदय-सभाएँ तो होती ही रहती थीं।

आज का पड़ाव पाण्डुकेश्वर में ही था। जोशी मठ से ९ मील

दूर यह पाण्डवों की स्मृति से सम्बद्ध क्षेत्र है। यहाँ श्री पाण्डुरंग
ा मनोरम दर्शन है।

श्री बदरिकापुरी के मार्ग में

७ अक्तूबर, रविवार

आज इस यात्रा के साफल्यस्वरूप श्री बदरीनाथजी के उस दिव्य धाम में पहुँचना था, जिसकी चिरलालसा लिये लोग लाखों की संख्या में यहाँ प्रतिवर्ष आया करते हैं तथा जिसकी एक झाँकी ही भक्त जनों के जीवन को धन्य बनाने के लिए पर्याप्त हुआ करती है। अतः नियमानुसार प्रातःकाल जब यात्रा आरम्भ हुई, तब स्वभावतः हृदय में एक अद्भुत उल्लास छाया हुआ था।

अब बस्ती छूट चुकी थी और प्रकृति के विशाल अङ्क में फैले सीढ़ीनुमा खेत दूर तक दिखाई दे रहे थे, जिनमें सुबह की हल्की धूप में रामदाने के पके-अधपके पौध लहरा रहे थे। समस्त दृश्यावलि एक पवित्र वातावरण से ओतप्रोत हो रही थी, जिसकी उन्मुक्त शोभा मन को सहज ही आकर्षित कर रही थी। मैं सोचती कि क्या मानव मन भी इसी प्रकार उन्मुक्त एवं विशाल नहीं बन सकता ? आज संसार में यह जो 'मैं-तू' का झगड़ा चल रहा है, उसने तो मानो विश्व के सम्पूर्ण सौंदर्य एवं माङ्गल्य का ही अपहरण कर लिया है। आज का यह मानव स्वार्थ के जिस दलदल में आपादमस्तक जा फँसा है, दिन-प्रतिदिन विनाश के जिस भीषण गर्त में वह लगातार गिरता जा रहा है, उस विपण्ण परिस्थिति के भीषण चक्र से निकलने का क्या अब कोई मार्ग अवशेष नहीं रहा ? इसीका उत्तर देने के लिए, विश्व को प्रेमपूत

जीवन की कला सिखाने के लिए आज यह सर्वोदय-विचार द्वार-द्वार थपकी देकर जन-जन को जगाता चल रहा है। 'गेहे-गेहे जने जने' आज इसके प्रचार की आवश्यकता है। आज मनुष्य जिस स्थान पर खड़ा है, उसके एक ओर है सर्वनाश की उग्र ज्वाला-मुखी तथा दूसरी ओर है सर्वोदय का अमर प्रकाश। उसे इन दोनों में से एक को चुनना है। विभिन्न वादों की आड़ में निरन्तर बढ़ते हुए स्वार्थमूलक संघर्षों की उग्रतर सम्भावनाओं के मध्य में भीतित्रस्त मानवता की सुरक्षा तब तक असम्भव है, जब तक मनुष्य का सोचा हुआ विवेक जाग्रत नहीं होता।

विनोबाजी भूदान माँगते है, ग्रामदान माँगते है, तो वे जमीन की, गाँवों की गठरी बाँधकर कहीं ले जाना तो नहीं चाहते ? बाबा जो कुछ कहते है, जयप्रकाशजी जो कुछ कहते हैं, उसका अर्थ यही तो है कि वे चाहते है कि लोगों का विवेक जाग्रत हो। वे यह समझें कि व्यक्तिगत हितों का सामाजिक अथच सार्व-भौमिक हितों के साथ समुचित समन्वय कैसे हो सकता है अर्थात् एक का सुख सबके सुखों में एवं सबका सुख प्रत्येक के सुख में कैसे सन्निहित हो सकता है; कैसे एक-दूसरे का पूरक बन सकता है। भूदान और ग्रामदान की गंगा में जब लोगों का मानस पवित्र बनेगा, क्षुद्रहृदयता मिटेगी, दृष्टि व्यापक होगी, तब स्वयं ही संघर्ष की हिंसक वृत्ति विलुप्त होकर सहयोग की वृत्ति स्थापित होगी और उसके परिणामस्वरूप विश्व सुखी होगा। जैसे सूर्योदय के पश्चात् अन्धकार स्वतः ही समाप्त हो जाता है, वैसे ही विश्व-बंधुत्व का प्रकाश फैलते ही सर्वग्रासी विश्व-युद्ध की सम्भावना भी

आप-से-आप विनष्ट हो जायगी। यह ऐसा तथ्य है, जिसे कोई भी निष्पक्ष विचारक अस्वीकार नहीं कर सकता।

यह कहाँ का धर्म है कि मनुष्य मनुष्य के क्रन्दन में हर्षोल्लास मनाये। कोई भूखों मरे और किसीके गल्ले के कोठे भरे जा रहे हों। महाभारत-पुराण में तो यहाँ तक कहा गया है कि "अन्न के उतने ही भाग पर सबका अधिकार है, जितने से पेट भरे, पर जो उससे अधिक पर अपना अधिकार जमाता है, वह चोर है और दण्ड का पात्र है।" किन्तु आज तो ठीक इसके विपरीत हो रहा है। किञ्चित् अवर्षण हो और अकाल की सम्भावना झाँक रही हो, तो देखिये, नाज के गोदाम के गोदाम चोरबाजार में विलुप्त हो जायेंगे। लोग भूख से तड़प-तड़पकर मरें, किन्तु क्या मजाल कि इन गल्ले भरनेवालों के हृदय पसीजें! उन्हें तो कीमत चाहिए, अधिक-से-अधिक कीमत। उनके समक्ष केवल अपना स्वार्थ होता है, संसार रसातल में जाय, इससे कोई तात्पर्य नहीं। इससे बढ़कर घृणित नृशंसता और क्या होगी? मनुष्य का यह कैसा घोर अधःपतन है कि वह अपने भाई के रक्त से भी अपनी पिपासा शान्त करने को प्रस्तुत हो जाता है। यह कैसा समाज है, यह कैसी व्यवस्था है, जो उसे ऐसा करने का अधिकार देती है?

यह लिखते समय मुझे सन् १९४३ स्मरण हो आता है। बंगाल में घोर अकाल छाया हुआ था। भूख से तड़प-तड़पकर मरे हुए नर-कंकालों की चिताओं की लपटें ऊँची-से-ऊँची होती जा रही थीं। अफवाह थी कि यह वस्तुतः एक कृत्रिम अकाल था, जो बंगाल की जन-शक्ति को कुचलने के लिए विदेशी शासन के अत्याचारपूर्ण कुचक्र के फलस्वरूप प्रस्तुत हुआ था। किन्तु

व्यापारी भाई भी ऐसे थे, जो इस परिस्थिति से लाभ उठाने में न चूके। वहाँ प्रायः ३० लाख व्यक्ति मरे थे और प्रत्येक मृतकों के ऊपर वहाँ के व्यापारियों को एक हजार का लाभ हुआ बताया जाता है। जो भी हो, बंगाल और बिहार स्वातंत्र्य-संग्राम के अग्रदूत माने जाते थे। अस्तु, बंगाल के उदाहरण पर ऐसे कृत्रिम अकाल की सम्भावना का आतंक बिहार में भी बढता जा रहा था और उसके साथ ही गल्ला जोड़ने की होड़ भी बढती जा रही थी। सरकार तो मानो इसी प्रतीक्षा में थी। अब बिहार में भी उसकी ओर से बडे पैमाने पर बलात् अनाज-उगाही का कार्य आरम्भ हो गया, जिसका उद्देश्य प्रत्यक्षतः तो अकाल रोकना भी बताया जाता था। किन्तु परिणाम क्या होता, इसके विषय में जनता सशंक थी। सरकार दो सेर प्रति रुपया की दर से चावल लेकर ढाई सेर के दर से जनसाधारण को देने की बात करती थी। देखने में योजना अच्छी प्रतीत होती थी, किन्तु कौन कह सकता था कि गल्ले सरकारी गोदामों में जाकर विलुप्त न हो जायँगे और बंगाल का दृश्य बिहार में भी उपस्थित न होगा? (बंगाल में, ट्रेन के ट्रेन गल्ले, जो सरकारी गोदामों में सड़ गये थे, अकाल के पश्चात् समुद्र में फेंके जाने के समाचार बाद में समाचार-पत्रों में बहुधा प्रकाशित होते रहते थे।)

इसी अवसर पर गल्ला-उगाही के कार्य को इस जिले में बल देने के लिए बिहार के तत्कालीन गवर्नर सर रथरफोर्ड गया आये। भूपजी को भी उनसे मिलने का निमंत्रण मिला। जब और बातों के साथ ही गल्ला-उगाही की बात आयी, तब इन्होंने स्पष्ट शब्दों में जनता की आशंका उनके सामने रखी और यह प्रस्ताव रखा

कि सरकार यह कार्य अपने हाथ में न लेकर बड़े-बड़े जमींदारों और व्यापारियों को ही इस बात पर राजी करे कि वे अपने गल्ले स्वयं ही उचित मूल्य पर वैसी जन-समितियाँ बनाकर जन-साधारण में वितरित करना आरम्भ करें, जिससे ऐसा वातावरण बने कि एक ओर लोगों के मन से आतंक मिटे और दूसरी ओर गल्ला जोड़नेवाले व्यापारी हतोत्साह हों और इन सबका नैतिक प्रभाव यह हो कि गल्ले का मूल्य स्वयं ही गिरना आरम्भ हो जाय; क्योंकि वस्तुतः उस वर्ष बिहार में गल्ले की कोई कमी न थी। रथरफोर्ड ने इसे अव्यावहारिक कहकर टालना चाहा, तब इन्होंने स्वयं अपने को पेश करते हुए कहा कि यदि उनकी योजना मान ली जाय, तो वे अपने उस वर्ष की और यदि आवश्यकता हुई, तो अगले वर्ष की भी उपज के समस्त चावल रुपये के तीन सेर की दर से (सरकारी योजना की दर ढाई सेर की थी) जनसाधारण को बेचने को प्रस्तुत हैं। अब रथरफोर्ड साहब ने मिसाल के लिए इनकी योजना स्वीकार कर ली। एक समिति स्थापित हुई और नगर में अन्नाज-वितरण का कार्य आरम्भ हुआ। एक निश्चित परिमाण में लोगों को चावल दिया जाता था। थोड़े-से अनाज के लिए इतनी अधिक भीड़ लगती थी कि उसे सँभालना कठिन हो जाता था। एक कारुणिक दृश्य था! इसे रोकने के लिए नगर के एक विशेष क्षेत्र में पारिवारिक आधार पर सप्ताह के दिन बाँट दिये गये। आठ मास तक यह योजना चलती रही। प्रत्यक्षतः यह एक क्षुद्र प्रयास था, जिसकी महत्ता उस अभाव की मरुभूमि में जल के एक बूँद से अधिक नहीं थी, तथापि देखा यह गया कि इसके साथ ही सरकार की गल्ला-उगाही की वह

योजना शिथिल होते-होते समाप्त हो गयी और कृत्रिम अकाल की वह आशंका भी लोगों के मन से मिट गयी। मैं इस भ्रम में रहने की भूल नहीं कर सकती कि यह सब परिणाम उस छोटी-सी योजना के फलस्वरूप हुआ था। भगवान् कौन-सा कार्य किस प्रकार पूर्ण करते हैं, इसे तो वे ही जानें। किन्तु मेरा यह विश्वास अवश्य है कि ईश्वर के नाम पर किया गया छोटा-सा कार्य भी महान् बन जाता है। गिलहरी ने थोड़ी मिट्टी ही डाली थी समुद्र में। कहाँ वह समुद्र, कहाँ वह गिलहरी और कहाँ उसकी लायी हुई तनिक-सी मिट्टी! किन्तु भगवान् ने उसे भी अपने कृपा-प्रसाद से विभूषित कर दिया।

मैं अपने विचारों में खोई-सी चली जा रही थी, तभी अलख-नन्दा की कलकल ध्वनि कानों में पड़ी, मानो मानव-मन को वे भी अपने समान ही निर्मल एवं उदार बनने का संदेश दे रही हों। अब पाण्डुकेश्वर से छह मील दूर हनुमान् चट्टी पास आ गयी थी। आकाश में बादल घने होते जा रहे थे और वर्षा की सम्भावना होने लगी थी। इसलिए भोजन के पश्चात् शीघ्र ही चल देने का निश्चय हुआ, जिससे यथासम्भव वर्षा के पूर्व ही श्री बद्रीनाथ-धाम पहुँच जायँ। आगे चलकर जो अनुभव हुआ, उससे यह निश्चय बहुत ही मूल्यवान् सिद्ध हुआ।

हनुमान् चट्टी से अब ऊँची चढ़ाई आरम्भ हो गयी थी। गाँव, खेत पीछे छूट गये थे और अब चारों ओर नीले शैल पर घने वृक्षों की हरियाली सुशोभित हो रही थी। अलखनन्दा में वेग अधिक आ गया था, अन्यथा प्रकृति शान्त थी। आकाश में मेघों का एकच्छत्र राज्य फैलता जा रहा था। जब श्री बदरि-

काश्रम पहुँचने में केवल दो मील रह गये, तभी किञ्चित् बूँदा-बाँदी होने लगी और वहाँ पहुँचते-पहुँचते खुलकर वर्षा आरम्भ हो गयी थी।

श्री बदरीधाम में आठ स्मरणीय दिवस

श्री बदरिकाश्रम से एक मील पूर्व एक प्राकृत प्रवेश द्वारा जैसा स्थान आता है। वहाँ से समग्र धाम एवं मंदिर के भव्य कलश का दर्शन हो रहा था। आँखों के समक्ष वही दिव्य पुरी सुशोभित थी, जिसके दर्शन की लालसा न जाने कब से लगी थी। कह नहीं सकती कि वह कैसा आनन्द था, कैसी परितृप्ति थी, जो मुझे यहाँ पहुँचकर मिली। पथिक को अपना गन्तव्य पाकर कितना हर्ष होता है, यह आज जाना।

मंदिर के समीप ही वहाँ के अतिथि-शाला में निवास का प्रबन्ध था। वहाँ जब पहुँचे, तो संध्या के ३ बज रहे थे। ठीक इसी समय श्री केदारनाथ भी पहुँचे थे। घनघोर वर्षा के कारण ऐसा लग रहा था, मानो गोधूलि का समय हो। मार्ग में सब लोग बरसाती रहते हुए भी भींग चुके थे। वर्षा का वेग कम होता न दीखता था। ठण्ढ का तो कहना ही क्या था! कल प्रातःकाल स्नानोपरान्त दर्शन करने का निश्चय किया गया। मेरे मन में तो धाम पर पहुँच जाने का ही बड़ा संतोष था।

श्री बदरीनाथधाम समुद्र-तल से १०,२४४ फीट ऊँचे पर प्राकृतिक उद्यान जैसा मनोरम दूर-दूर तक बसा एक उन्मुक्त क्षेत्र है। अलखनन्दा धाम के चरण पखारती कुछ गाती-सी अपनी शोभा बिखेरती चलती है। मन्दिर के समीप ही तप्त जल का कुण्ड ईश्वर के लीला-वैचित्र्य का गुण-गान करता सुशोभित है।

यहाँ मन्दिर की ओर से अल्प रूप में अतिथिशाला इत्यादि में बिजली की व्यवस्था भी कर ली गयी है। अतः ऋषिकेश के पश्चात् आज इतने दिनों पर विद्युत् प्रकाश देखने को मिला था। किन्तु वर्षा और झंझावात के आघात से कुछ ही देर में यह ऐसा छिन्न-भिन्न हुआ कि फिर कुछ दिनों तक ठीक न हो सका।

८ अक्तूबर, सोमवार

प्रातः उठे, तो वर्षा बन्द थी और उसके स्थान पर हिमपात आरम्भ हो गया था। मुझे इसके पूर्व यह दृश्य देखने का अवसर नहीं मिला था। ठण्ढे देशों में तो हिमपात एक साधारण-सी बात है। किन्तु हमारे जैसे गर्म देश के रहनेवालों के लिए यह दृश्य दुर्लभ है। शीतकाल में चार-पाँच हजार फीट के ऊपर हिमालय में हिमपात का दृश्य देखा जा सकता है। किन्तु इन महीनों में तो यह एक प्राकृतिक संयोग ही था। जब हिमपात होता है, तब प्रकृति में एक अपूर्व शान्ति छा जाती है। उस प्रकार के शान्त वातावरण का वर्णन करना भी कठिन है। श्वेत, शीतल धुने कपास के गाले जैसा हिम-समूह निःशब्द आकाश से उतरता चला आता था। कुछ ही देर में समग्र दृश्यावलि श्वेताम्बरा दीख पड़ने लगी।

प्रातः सात बजे जब हम लोग दर्शन के लिए चले। उस समय मार्ग में लगभग पौन फुट हिम जमा हो चुका था। धरती पर श्वेत गलीचा-सा बिछा था। मकान की छतें, बरामदे की छाजनी, दूकानों की पंक्ति, वृक्ष, पौधे, सभी हिमाच्छादित हो रहे थे। हिम में घुट्टी तक पैर धंसते चल रहे थे। ऊपर से भी बर्फ की वर्षा हो रही थी। लगता था, मानो मार्ग में ही जम

जायँगे। दर्शन का उल्लास न होता, तो घर से ही न निकलते। किसी प्रकार मंदिर पहुँचे, तो वहाँ पैर डुबोने के लिए तप्त कुण्ड के जल की व्यवस्था देखी। उसीमें सब लोगों ने पैर धोये अथवा यह कहिये कि पैर सेंके और साथ में लाये ऊनी मोजे पहन लिये। अब जान में जान आयी। मन्दिर के अन्दर भी दर्शनार्थियों के बैठने के लिए ऊनी गलीचा बिछा था। यह सब व्यवस्था समयानुकूल ही थी।

नर-नारायण के रूप में भगवान् सामने ही विराजमान थे। रोम-रोम उनके दर्शनों से प्रफुल्लित होकर उनकी चरण-वन्दना में मग्न था। प्रातःकालीन पूजा अभी आरम्भ ही हुई थी। विधिवत् पंचामृत स्नान कराया गया, केसर चन्दन के शृङ्गार हुए और सबके पश्चात् आरती उतारी गयी। प्रायः ३ घण्टे में पूजा सम्पूर्ण हुई। तत्पश्चात् पार्श्वस्थित श्री महालक्ष्मीजी के दर्शन किये। इस प्रकार अपनी आँखों को सफल कर ११ बजे निवास-स्थान पर लौट आये। 'अक्ष्वन्वतां फलमिदं न परं विदामः।'

श्री बदरीनाथ के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय में भगवान् के विभिन्न अवतारों के अन्तर्गत एक शिक्षाप्रद एवं रोचक कथा आयी है। सृष्टि के आदिकाल में धर्म-पत्नी मूर्ति के गर्भ से स्वयं भगवान् ने नर-नारायण के रूप में अवतार धारण किया और अपने भगवदाराधन रूपी तपश्चर्या के आचरण से संसार को उस स्थिति की प्राप्ति का मार्ग बतलाया, जिसमें साधना और सिद्धि, साधक और साध्य दोनों ही एक-दूसरे में ओतप्रोत हो जाते हैं, एक हो जाते हैं। भक्ति-भरित तपस्या के द्वारा नर-नारायण का भेद मिट सकता है, नर भी

नारायण बन सकता है—यह यहाँ की मुख्य शिक्षा है। एक बार ऋषीश्वरों से सेव्य उनकी वह अखण्ड तपस्या देखकर इन्द्र द्वारा प्रेषित तपस्वियों का शत्रु कामदेव स्वर्ग की अप्सराओं के साथ श्री बदरिकाश्रम आ पहुँचा और भगवान् की तपस्या भंग करने का उपक्रम करने लगा। मन ही मन वह और उसके साथी आश्रम का तेज देखकर श्राप-भय से आतङ्कित हो रहे थे। किन्तु वहाँ तो उन्होंने आश्चर्यचकित होकर देखा कि क्रुद्ध होने के बदले भगवान् नर-नारायण सहज भाव से मुस्करा रहे थे और श्राप देने के स्थान पर उन्हें आश्रम का आतिथ्य स्वीकार करने का निमंत्रण दे रहे थे। तत्पश्चात् भगवान् ने अपनी योग-शक्ति से ऐसी अनेक सुन्दर स्त्रियाँ प्रकट कीं, जिनके समक्ष स्वर्ग की अप्सराएँ भी लज्जित हो रही थीं। वे स्त्रियाँ उन नर-नारायण के रूप में विराजमान सर्वेश्वर की सेवा में संलग्न दीख पड़ीं। भगवान् के सात्त्विक तेज के समक्ष गर्वविगलित वे अप्सराएँ और स्वयं काम भी अकाम हो गये। तत्पश्चात् भगवान् ने अपनी योग-शक्ति द्वारा प्रादुर्भूत उन नारियों में से उर्वशी नाम की एक स्त्री को उपहार-स्वरूप देकर उन्हें विदा किया। भगवान् के चरणों में बारम्बार वन्दना करते हुए वे परम सुन्दरी उर्वशी को सत्कारपूर्वक आगे कर स्वर्ग लौट गये। इस प्रसंग में यह दिखाया गया है कि जो तपस्या बनने-बिगड़नेवाली तपस्या न होकर एक ऐसी सहज स्थिति हो जाती है, जो सभी अवस्थाओं में एक-सी अचल रहती है, वही तपस्या वास्तविक तपस्या है। वह एक ऐसा निर्मल प्रकाश है, जिसे विकाररूपी वायु प्रकम्पित नहीं करता, मोहरूपी वर्षा बुझा नहीं सकती तथा जिसमें अनन्त तेज होते हुए भी दाहकता

नहीं होती। इसी प्रसंग में निम्नलिखित श्लोक आया है, जिसमें श्रीमद्भागवतकार ने जीवन का एक ऐसा सिद्धान्त प्रतिष्ठित किया है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। 'क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्व्यशैश्न्यान् अस्मानपारजलधीनतितीर्य केचित्। क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं पदे गोर्मज्जन्ति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजन्ति।।'—एक क्रोध को नहीं जीता, तो मनुष्य की समस्त सिद्धियाँ व्यर्थ हो जाती हैं, वैसे ही जैसे सागर पार करनेवाला गड्ढे में डूब मरे।

यह बदरिकाश्रम ऐसी अनेकानेक दिव्य गाथाओं का उद्गम एवं भारतीय संस्कृति का हृदय-देश ही रहा है। व्यासजी का तो यह प्रसिद्ध प्रिय स्थान ही है। पद्मपुराण में वर्णित श्रीमद्भागवत-माहात्म्य के अनुसार 'भक्ति' जब अपने पुत्र 'ज्ञान' एवं वैराग्य की मूर्च्छावस्था से अत्यन्त क्लेशित हो रही थीं, तब उनके दुःख से दुःखित होकर भटकते हुए नारदजी को, भगवत्-शरणागति के सातत्य के कारण सदा ही पाँच वर्ष के दीख पड़वाले सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमारों ने विस्मृत भागवत-ज्ञान का यहाँ ही स्मरण कराया था। श्री मार्कण्डेय मुनि की एकाग्र तपस्या से प्रसन्न होकर परम कृपालु भगवान् ने उन्हें नर-नारायण के रूप में दर्शन देकर इसी स्थान पर कृतार्थ किया था। 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' के यथार्थ द्रष्टा उन अनेक ऋषि-महर्षियों से सेवित यह स्थान निश्चय ही धन्य है।

प्रातःकाल से जो हिमपात आरम्भ हुआ था, वह चल ही रहा था। समग्र दिशाओं के साथ श्री बदरिकाश्रम उस निरन्तर गिर रहे हिम-कणों से ढँक-सा गया था। ऐसा लगता, मानो भगवान् नर-नारायण के साथ ही कैलाशपति शंकर भगवान् की प्रसन्नता

के लिए स्वर्ग के देवता नन्दनवन के सुमनों की वृष्टि कर रहे हों, अथवा मानो कामधेनु अपने दुग्ध से सर्वेश्वर को अभिषिक्त कर रही हो और उसीकी ये उड़ती हुई फुहारें धरती को सिञ्चित कर रही हों।

९ अक्तूबर, मंगलवार

सुबह उठी, तो कुछ अँधेरा ही था। धीरे-धीरे कुहासे और हिमपात के आवरण में लिपटा दिन का मृदुल प्रकाश फैलने लगा। चौवीस घण्टों के पश्चात् आज भी हिम-वृष्टि रुकी न थी। जिधर दृष्टि जाती, हिम ही हिम दिखाई देता। सामने दीख पड़ रहे पर्वत-शिखर, जो सामान्यतः अपने श्याम अङ्ग पर केवल हिम-मण्डित हीरक-किरीट ही धारण किये होते, अब मानो उतने से ही सन्तुष्ट न होकर सर्वाङ्ग हीरक वेशधारी हो रहे थे। बरामदे में बैठकर मैं यह शोभा देखने का लोभ संवरण न कर पाती। तीव्र ठण्ढ बारम्बार कमरे में जाने को विवश करती, किन्तु मैं पुनः-पुनः बाहर आ बैठती। लोगों के आते-जाते रहने से मार्ग के कुछ भाग का हिम दबकर सुदृढ होता जाता, जिसे नवीन हिम-कण पुनः ढँक लेते। इस प्रकार आजू-बाजू में समुज्ज्वल एवं मृदुल हिम-कगारों के मध्य एक सुन्दर पगडंडी निर्मित होती चलती। ठीक बरामदे के सामने ही एक झबरा कुत्ता घूम रहा था, जो हिम से ढँककर सम्पूर्ण श्वेतांग बन जाता और पुनः अपना रोयेंदार शरीर झाड़कर स्वाभाविक भूरे पीले रंग में आ जाता। अब प्रायः ८ बज चुका था, किन्तु ऐसा लगता, मानो अभी-अभी सबेरा हुआ हो। ऐसे हिमाच्छादित वातावरण में घड़ी न हो, तो पता न चले कि कब मध्याह्न हुआ और कब संध्या आयी।

समाचार मिल रहा था कि नीचे घनघोर वर्षा ह रही थी। दो दिनों की इस निरन्तर वर्षा से पहाड़ के ढोंके टूट-टूटकर मार्ग पर आ गिरे थे, कहीं सड़क ही धँस गयी थी और कहीं पुल वह गये थे। दूर-दूर तक तार के खम्भे उखड़ गये थे और इस प्रकार बदरिकाश्रम से वाह्य जगत् का सम्बन्ध कुछ काल के लिए अवरुद्ध हो गया था। यदि हम लोग हनुमान् चट्टी से चलने में कुछ भी विलम्ब कर देते, तो इस भीषण वर्षा के कारण हम लोगों का श्री बद्रीपुरी में पहुँचना न होता और तब जिस कठिनाई में हम लोग पड़ गये होते, उसकी कल्पना ही दुखदायी है। यह हम लोगों पर भगवान् की कृपा ही थी कि तूफानी ऋतु आरम्भ होते न होते हम उनकी शरण में आ पहुँचे थे।

श्री बद्रीनाथ-धाम में हम लोगों के केवल तीन दिन ही रुकने का कार्यक्रम था, किन्तु इस परिस्थिति में अब तो यहाँ से जाना अपने हाथ में नहीं था। नीचे वर्षा बन्द होने के पश्चात् भी जब तक मार्ग ठीक नहीं हो जाता, तब तक तो रुकना ही था। केवल श्री बद्रीनाथ-क्षेत्र ही नहीं, किन्तु समस्त गढ़वाल में ही इस तूफान के कारण भयंकर स्थिति पैदा हो गयी थी और वाह्य जगत् से उसका सारा सम्पर्क समाप्त हो गया था। यहाँ से कुछ आगे माना गाँव में भारत-सरकार की सीमान्त चौकी है; वहाँ वायरलेस का प्रबन्ध रखा गया है, किन्तु वह भी न जाने कैसे बेकार हो गया था और अब सम्पर्क का, जो यही एक साधन था, उसका भी उपयोग न हो पा रहा था।

मंदिर की ओर से यथासम्भव यात्रियों की देख-रेख रखने की चेष्टा की जा रही थी। वहाँ के सेक्रेटरी बधवारीजी एक

उत्साही व्यक्ति दीखे। वे प्रायः आते और पूछताछ करते। प्रथम दिवस से ही महाप्रसाद आ रहा था। चावल, उरद की दाल, खीर, मेवाभात, उरद के वड़े तथा और भी अनेक व्यञ्जन होते। श्री भाईजी को डॉक्टरों ने चावल खाना मना कर रखा है, तथापि वे स्वल्प मात्रा में महाप्रसाद ग्रहण करते। हम सव लोग तो दिन में महाप्रसाद ही भोजन करते। तप्तकुण्ड समीप होने के कारण गरम जल की वहुत सुविधा थी, जो ऐसे ठण्ढ में एक ईश्वरीय वरदान ही था।

० अक्तूवर, वुधवार

आज प्रातःकाल से हिम-वृष्टि रुक गयी, किन्तु उसके स्थान पर अव पुनः भीषण वर्षा आरम्भ हो गयी थी। छाजनियो पर जमे हिम के ढोंके वर्षा के कारण अकस्मात् लुढ़क आते और वर-सातियों में छिपे आने-जानेवाले लोगों के लिए एक और भी आपदा सिद्ध होते, जिससे ऐसे मार्गों पर उन्हें विशेप सावधानी वरतनी पड़ती। नीचे से पहाड़ों के धँसने, टूटने के समाचार आसपास के आते-जाते इक्के-दुक्के पहाड़ियों द्वारा प्रत्येक वार अधिक भीषणता से दुहराये जाते। उनके लिए प्रकृति का यह ताण्डव सर्वथा अपरिचित न था, फिर भी वे कहते कि इन महीनों में ऐसा तूफान उन्होंने जीवन में प्रथम बार देखा है। न जाने कौन-सी आसुरी माया थी, जो इसका परिचालन कर रही थी। आणविक अस्त्रों के विस्फोट से उत्पन्न विकृति ही तो प्रकृति के इस कोप का कारण न थी? जो भी हो, इन्द्र के क्रोध करने पर जैसे व्रज भगवान् की छत्रछाया में निश्चिन्त था, वैसे उनकी यह पुरी भी इस भीषण वर्षा में हिम का आवरण ओढ़े उनकी ही शरण में पड़ी थी।

यहाँ के निवासी इस अवसर पर श्री भाईजी की इस अनपेक्षित अधिक दिन की उपस्थिति का लाभ उठाने से न चूके और कष्ट सहकर भी निरन्तर उनसे मिलने आते रहे। प्रातः ८ से ११ और संध्या ३ से ८ तक कुछ व्यक्ति उनके समीप बने रहते और चर्चा चलती रहती। यहाँ रहते एक श्री विमलानन्द साधु भी इनसे मिलने आते। जब वे बोलते तो लगता, मानो कहीं दूर से बोल रहे हों। उन्होंने कहा कि "आपको देश की बागडोर शीघ्र ही अपने हाथों में लेनी होगी।" श्री भाईजी कहते कि वे तो राजनीति से अलग हो गये हैं और सत्तानिष्ठ राजनीति में विश्वास नहीं रखते। किन्तु वे मानो अपनी ही बात दुहराते जाते—"देश की माँग को आप ठुकरा नहीं सकते। देश की सुरक्षा के समक्ष आपकी अपनी इच्छा का महत्त्व गौण है।"

जियाभाई नेपाली और उसके दूसरे साथी अपने पहाड़ी अनुभवों और अभ्यास का लाभ हमें दे रहे थे। बलदेव ने भी हिम्मत न छोड़ी थी। तप्तकुण्ड का जल प्रायः वह ले आता। छोटे-बड़ों की भेद-भावना से परे श्री भाईजी का सहज स्नेह सब लोगों पर एक-सा छाया रहता। लोगों के भोजन, विश्राम इत्यादि छोटी-छोटी बातों पर भी उनका ध्यान रहता।

संध्या तक वर्षा कुछ धीमी पड़ी और यह आशंका की जाने लगी कि वृष्टि बन्द होकर पुनः हिमपात आरम्भ हो जायगा। रात्रि में मै और दीदी शयन-आरती देखने चलीं। मार्ग में चारों ओर फैले अन्धकार के मध्य 'टार्च' के प्रकाश में जमे हुए हिम की दृढ़ और सुन्दर पगडंडी पर पैर जमाते चले। मंदिर पहुँचे, तो आरती उतारे जाने का दर्शन हो ही रहा था। दर्शन के उपरान्त

भगवान् के श्रीअङ्ग की प्रसाद्-माला हम लोगों को मिली। वहाँ से लौटकर भोजन किया और विश्राम की तैयारी हुई।

हिम-वृष्टि की आशंका को मिटाती हुई वर्षा पुनः तेज हो गयी। खिड़कियों से छनकर बरामदे से बाहर निकल रहे अँगीठी के हल्के प्रकाश में जल की बूँदें चमक उठतीं, किन्तु उसके पार उस सघन अन्धकार को भेदकर दृष्टि कुछ भी देखने में असमर्थ सिद्ध होती। फिर भी वर्षा का बँधा हुआ-सा रिमझिम शब्द इस ससक से उस ससक पर जाता हुआ प्रकृति की उधर जो क्रीड़ा चल रही थी, उसका आभास दे जाता।

११ अक्तूबर, गुरुवार

सुबह तक वर्षा कुछ धीमी पड़ गयी थी और मेघों के आवरण से छनकर आता दिन का प्रकाश आज कुछ अधिक उज्ज्वल दीख रहा था। कभी-कभी मेघों के वातायन से झाँकते नील गगन की एक झलक दिखाई दे जाती। ऋतु अनुकूल होने के लक्षण अब दीखने लगे थे। तीव्र वायु के झोंके मेघों के उस समुद्र में हिलोर पैदा करते। कभी वर्षा बन्द हो जाती, कभी होने लगती। रजत जैसे चमकीले श्वेत बादलों के नीचे धूसर मेघों की हल्की परत उड़ती हुई भली लगती। यह सब होते हुए भी ऋतु के विषय में निश्चित भविष्यवाणी नहीं की जा सकती थी। लोग बताते कि ऐसी ऋतु में कभी वर्षा के साथ ही हिम-पात भी होने लगता है, जो बहुत ही कष्टदायक होता है। किन्तु न तो ऐसा ही हुआ और न वृष्टि ही रुकी। वायु की तीव्रता अवश्य ही कम हो गयी, मानो मेघों के समक्ष उसने अपनी हार स्वीकार कर ली हो। फिर भी कल रात्रि की अपेक्षा वर्षा

की गति वहुत धीमी थी। चारों ओर स्वच्छ हिम भी दृढ़ हो गयी; भूमि हीरक पीठिका जैसी सुशोभित हो रही थी, जिस पर कहीं-कहीं पड़ती छाया हल्की नीलिमा लिये परिलक्षित होती।

आज श्री भाईजी का जन्म-दिवस था। इस शुभ पर्व के अवसर पर सब लोगों के मन में उल्लास छाया हुआ था, किन्तु श्री भाईजी अपना जन्म-दिन मनाते ही नहीं; अतः इसका कोई अतिरिक्त कार्यक्रम न था। तथापि वहाँ के निवासियों ने इस उपलक्ष्य में संध्या समय उनसे मिलने का कार्यक्रम बना रखा था। भगवान् तो भक्त के वश में होते हैं। श्री भाईजी को भी लोगों का आग्रह रखना पड़ा। पार्श्व कक्ष में जितनी जगह थी, उससे अधिक लोग एकत्र थे। लोगों की प्रेम तथा श्रद्धाभरी दृष्टि उनका अभिनन्दन कर रही थी। मंदिर की ओर से श्री बधवारीजी ने उन्हें तिलक लगाया और भगवान् के श्रीअंग की माला आशीर्वाद-रूप में पहनायी। इस अवसर पर उन्होंने कुछ साधन-दान भी दिये। तत्पश्चात् वयोवृद्ध व्यक्तियों ने आशीर्वाद से विद्वान् पंडितों ने मंगलवाचक श्लोकों एवं इस अवसरविशेष के लिए रचित संस्कृत पद्यों से तथा सभी लोगों ने पुष्प-मालाओं से उनका अभिनन्दन किया। लोगों का उत्साह देखते ही बनता था। इस अवसर पर जलपान की व्यवस्था भी की गयी थी। इन सबके अन्त में श्री भाईजी ने नम्र शब्दों में एकत्रित व्यक्तियों को धन्यवाद देते हुए कहा कि "मै एक साधारण व्यक्ति हूँ और अपना जन्म-दिवस कभी नहीं मनाता। भगवान् के इस पुण्यधाम में आना ही एक सौभाग्य की बात है। यहाँ आये थे, तो आप सब लोगों से मिलना तो था ही। कुछ मौसम और साफ हो जाता,

तो अच्छा होता ; किन्तु आप लोग आज ही इतने कष्ट उठाकर यहाँ आये, इसके लिए आभारी हूँ।" इसके पश्चात् प्रायः डेढ़ घण्टे तक वे सर्वोदय का मंगलमय संदेश लोगों को समझाते रहे।

श्री भाईजी को कल से ही कुछ ज्वर था, आज उपवास भी था, किन्तु उन्हे इसकी कोई चिन्ता न थी। लोगों ने भी शान्तिपूर्वक उनका भाषण सुना और अन्त में उनसे प्रेमपूर्वक मिलकर विदा ली।

१२ अक्तूबर, शुक्रवार

आज श्री दुर्गा अष्टमी थी। प्रायः ७ बजे प्रातः दर्शन करने गये। मार्ग में हिम उसी प्रकार जमे हुए थे। लोग कहते कि ये वर्फ मास के पूर्व गलनेवाले नहीं थे। और यह भी तो सम्भव था कि शरद् ऋतु की निकटता के कारण अगला हिमपात इस बीच में ही आरम्भ हो जाता और तब गलने के स्थान पर आगामी ग्रीष्म ऋतु तक ये अधिकाधिक पुष्ट होते चलते। यत्किंचित् वर्षा अभी हो ही रही थी, किन्तु कल और आज के वातावरण को देखकर ऐसा लगता था कि अब तूफान का अध्याय समाप्त हुआ। आज से ध्वस्त मार्गों की मरम्मत के लिए श्रमिक उतारे जा चुके थे। इंजीनियर भी उनके साथ व्यस्त थे और यथासम्भव शीघ्र घिरे लोगों के यातायात के लिए उसके सुधार की व्यवस्था की जा रही थी।

श्री ओमप्रकाशजी, श्री द्वारकोभाई तथा मठाणीजी माना गाँव देखने गये थे, जो इस ओर भारत की सीमान्त सैनिक चौकी है। यहाँ लगभग ४०० की आबादी है, जो शीतकाल में नीचे पाण्डुकेश्वर में जाकर रहते थे। सुना गया था कि इस भीषण तूफान से

वहाँ बहुत क्षति पहुँची है और कितने ही लोगों की मृत्यु हो गयी है। लौटकर उन लोगों ने वहाँ की जो स्थिति सुनायी, वह बहुत ही करुणाजनक थी। सड़कों पर काम करनेवाले ग्यारह व्यक्ति इस हिमानी तूफान के चपेटे में आकर घर न पहुँच सके और वहीं दब गये, जिनमें किसी प्रकार तीन के प्राण बचाये जा सके। मवेशी भी बहुत मरे थे। घर टूट गये थे और वर्षा और ठण्ढ के आक्रमण से जो व्यक्ति बचे थे, वे भी अधमरे हो रहे थे। यहाँ से तिब्बत की सीमा केवल १० मील दूर रह जाती है।

संध्या समय मंदिर के प्रधान श्री रावलजी की ओर से श्री भाईजी को निमंत्रण था। वहाँ से जब वे लौटे, तो प्रायः ७ बजे श्री बसन्तकुमार बिड़ला उनसे मिलने आये। ये बेचारे नीचे लामबगोड़ा चट्टी और हनुमान् चट्टी में छह दिनों से अपने परिवार के साथ रुके पड़े थे। वहाँ बस्ती छोटी होने के कारण निवास और भोजन इत्यादि की समुचित व्यवस्था न होने से इन लोगों को बहुत कष्ट उठाने पड़े थे। आज किसी प्रकार यहाँ के पहाड़ी भाइयों के सहारे ऊपर की बीहड़ पगडंडियों को पार कर वे लोग बदरिकाश्रम पहुँच पाये थे।

१२ अक्तूबर, शनिवार

आज वायु में पुनः तीव्रता भर रही थी और आशा की जा रही थी कि कल तक आकाश स्वच्छ हो जायगा। यह आशा ही तो अनिश्चितता के प्रगाढ़ अंधकार में उजेला बनकर मन को डूबने से बचाती है। वह न हो, तो जीवन ही भार हो जाय। आज के दुःख का भार आशाभरे कल के कन्धों पर डालकर मनुष्य अपना मार्ग तय करता चला जाता है।

आज हम लोगों की ओर से श्री बदरीनाथजी की विशेप पूजा का आयोजन था। श्री भाईजी तथा हम सभी प्रातःकालीन पूजा के ठीक समय से मन्दिर आये। श्री वसन्तकुमार बिड़ला की ओर से भी आज ही पूजा थी। अतः वे लोग भी आये हुए थे। दिव्य वेदध्वनि के मध्य में भगवान् का पोड़शोपचार पूजन आरम्भ हुआ। सौन्दर्य को भी सुन्दरता प्रदान करनेवाले योगेश्वरेश्वर भगवान् की त्रैलोक्यसुन्दर शोभा का ध्यानमात्र ही हृदय को पवित्र कर देनेवाला है। संयोग से आज श्री दुर्गा नवमी का पवित्र दिवस भी मिला था। किन्तु वस्तुतः तो वही दिन परम धन्य है, वही क्षण महान् है, जब भगवान् के दर्शन, पूजन का अवसर प्राप्त हो।

भगवान् नर-नारायण की अर्चना-वन्दना कर उनकी चिर-संगिनी लक्ष्मी महारानी की पूजा की। नारायण के साथ लक्ष्मी के सतत संयोग का यह निरूपण भी कितना अर्थपूर्ण एव सुन्दर है। हम हिन्दू विष्णु से अयुक्त लक्ष्मी की कल्पना नहीं कर सकते। विष्णु अर्थात् मूर्तिमान् धर्म। जब तक 'धर्म' और 'अर्थ' का सम्बन्ध स्थापित है, तभी तक वह 'अर्थ' है ; 'सम्पत्ति' जब तक पुण्य की अनुगामिनी है, तभी तक वह सम्पत्ति कहलाने की अधिकारिणी है; उससे पृथक् होते ही वही 'अर्थ' 'अनर्थ' बन जाता है, वही 'सम्पत्ति', 'विपत्ति' बन जाती है। यह इस रूपक का मन्तव्य है। पाप से कमायी हुई लक्ष्मी रावण द्वारा अपहृत सीता की भाँति ही जिसके घर में रहती है, उसीके विनाश का कारण बनती है। केवल अर्जन के समय ही नहीं, उसके व्यय के समय भी धर्म अपेक्षित है ; 'चिर-संगिनी' तभी वह होगी।

अन्यथा भस्मासुर को दिये शिव के वरदान की भाँति ही वह उसकी घातिका सिद्ध होगी। लक्ष्मी के स्वरूपनिरूपण में इतनां ही नहीं है। सहस्र फण से युक्त शेषनाग की लपलपाती जिह्वा कें नीचे अविचलित भाव से परमाराध्य भगवान् के चरण-कमलों में संलग्न रहनेवाली वे लक्ष्मी अर्थात् साक्षात् काल के समक्ष भी निर्भीक रहनेवाले अनन्य भगवद्भक्तों के परमावस्था की सजीव अभिव्यक्ति! यह उस रूपक का दूसरा मन्तव्य है।

पूजा-प्रदक्षिणा के उपरान्त प्रायः ११ बजे सब लोग निवास-स्थान पर लौटे। आज के विशेष पूजा-समारोह के उपलक्ष्य में केसरिया भात का विशेष प्रसाद आया था। केसर का रंग अनुराग का प्रतीक माना जाता है। अस्तु, यह केसरिया भातं मानो भगवान् द्वारा भक्तों की पूजा ग्रहण करने के उपरान्त उन्हें अपने प्रेम के वरदान का ही संकेत हो।

संध्या समय काली कमलीवालों के यहाँ से श्री भाईजी का निमंत्रण था। श्री बदरी-केदार की यात्रा में स्थान-स्थान पर धर्मशाला एवं सदावर्त-व्यवस्थापक के रूप में इनका नाम प्रसिद्ध है।

श्री बदरिकाश्रम से विदाई

१४ अक्तूबर, रविवार

श्री विजयादशमी का आज पुण्य-महोत्सव था। आज के दिन नीलकण्ठ पक्षी के दर्शन का माहात्म्य है। हम लोग तो स्वयं जगत्-हित के लिए 'नील-कण्ठ' कहलानेवाले शिवजी के निवास हिमालय की गोद में ही बैठे हुए थे। ऊँचे उठे अनेक स्तूपाकार पर्वत-शिखर मानो शिव-मन्दिरों का ही बोध कराते थे।

सृष्टि के इतिहास में भगवान् शंकर को नीलकण्ठ बनानेवाले गरल-पान की वह कथा भी कितनी विलक्षण है। इस युग में वैज्ञानिकों द्वारा उस समुद्र-मंथन जैसा ही विश्व-मंथन का प्रयास किया जा रहा है और उसके फलस्वरूप आणविक अस्त्रों का हलाहल भी प्रस्तुत हो चुका है। किन्तु कौन है ऐसा, जो इस समय शिव बनकर जगत् की रक्षा करे ? हलाहल निकला है, तो अमृत भी निकलेगा; किन्तु उसके पहले ही यदि यह सृष्टि नष्ट हो गयी, तो फिर कौन निकालेगा अमृत और कौन करेगा उसका पान ? समस्त प्राणियों के हृदय में करुणा, प्रेम इत्यादि सद्गुणों के रूप में स्थित भगवान् की अजेय शक्ति पर आश्रित 'सर्वोदय' ही आज का वह शिव है। इस जगत् को सर्वनाश के तीव्र हलाहल से बचाकर मनुष्य की आसुरी वृत्तियों को नहीं, अपितु उसकी दैवी वृत्तियों को ही विश्व-प्रेमरूपी शाश्वत अमृत का पान कराना उसका इष्ट है।

इतने दिनों पर आज सूर्यदेव के दर्शन हुए थे। नील गगन में यत्र-तत्र बिखरे मेघ क्रमशः रंगमंच से विदा ले रहे थे। धूप निकली हुई थी और उसके प्रकाश में चमकते हिम को छूकर अमृत जैसा शीतल पवन झपाटे से बह रहा था। आज यहाँ रुके आठवाँ दिन था और अब चलने की तैयारी हो रही थी। श्री मानसिंहजी रावल कल ही मार्ग-स्थिति का पता लगाने जा चुके थे और उन्होंने सूचना भेजी थी कि मार्ग में इतना सुधार हो चुका था कि उसे किसी प्रकार पार किया जा सकता था।

श्री माताजी ने दशहरे के उपलक्ष्य में श्री भाईजी को तिलक लगाया (चान्द्रमास के अनुसार श्री भाईजी की जन्मतिथि विजयादशमी ही है।) और सब लोगों को भी उन्होंने मिठाई

खिलायी। सभीसे उनका स्नेह एक वयोवृद्ध माता के समान ही रहता था। आज हम लोगों के भोजन की व्यवस्था पण्डाजी ने की थी। अस्तु, भोजन इत्यादि सब कार्यों से निवृत्त होकर प्रायः १० बजे दिन में भगवान् से आज्ञा लेने उनके समक्ष गये। विजय-महोत्सव के उपलक्ष्य में श्री बदरीनाथजी का रत्नजटित मुकुट का शृङ्गार हुआ था। सब लोगों को भगवान् की प्रसाद-माला तथा चन्दन मिला। इसके पश्चात् उन अन्तर्यामी को प्रणाम कर हम लोगों ने प्रस्थान किया। पैर आगे चल रहे थे, किन्तु मन वहीं था। सहज नेहवश वहाँ के बहुत लोग मना करते रहने पर भी प्रायः २ मील तक पहुँचाने आये।

प्रकृति की ध्वंसलीला

अभी तक तो मार्ग ठीक ही था, किन्तु अब ऐसे स्थान पर आये थे, जहाँ एक झरना प्रबल वेग से मार्ग तोड़कर उसके ऊपर से बह रहा था। कुछ ऊँची शिलाओं पर पटरे डाले गये और सबलोग पार हुए। प्रायः १२ बजे हनुमान चट्टी के इधर उस नाले के समीप पहुँचे, जिस पर जाते समय काठ का पुल था, किन्तु वह पुल तो अब नष्ट हो चुका था और उसके स्थान पर गरजती हुई जलराशि प्रबल वेग से बह रही थी। कुशल था कि पाट कम था, अस्तु बल्लों और पटरों के सहारे उसे भी किसी प्रकार पार किया गया। हनुमान चट्टी के पश्चात् कुछ दूर तक मार्गों की भीषण क्षति हुई थी। ऐसा लगता था, मानो भूकम्प ने उस समस्त शैलभाग को झकझोर डाला हो। पथ के स्थान पर अब ढालुआँ खाई थी, जो न जाने कहाँ जाकर समाप्त होती थी। उसके ऊपर

की ओर खड़ा गिरिभाग था, जिसमें अड़े प्रस्तर-खण्ड मानो गिरने की बाट जोह रहे थे। उसी ढालू स्थल पर पैर रखनेभर को चिकनी पगडंडी बनी थी। तेज चलते हैं, तो गिरने का भय और धीमे चलते हैं, तो ऊपर से लटके शिला-खण्ड का आतंक! खाई की ओर देखते ही चक्कर आता था और काल-सदृश लटकी शिलाएँ तो मानो एक चुनौती ही थीं। केवल भगवान् का ही सहारा था। जिनकी महिमा कविगण गाते नहीं अघाते, जिनकी कृपा से 'गोपद सिन्धु अनल सितलाई। गरल सुधा रिपु करै मिताई।' उन्हींका नाम लेते हुए उसे पार किया। ऐसा प्रतीत होता, मानो स्वयं श्री बदरीविशाल ही अपनी सुरक्षा में हम लोगों को उस दुर्गम स्थिति से पार कर रहे हों। जहाँ ऐसे स्थल आते, श्री भाईजी रुककर अपनी देख-रेख में सब लोगों को पार करा लेते और तब स्वयं पार होते। उनको दूसरों की सुरक्षा का कितना ध्यान होता, यह तो देखने से ही जाना जा सकता था।

इस प्रकार प्रकृति की ध्वंस-लीला का अनुभव लेते प्रायः ४ बजे पाण्डुकेश्वर पहुँचे। आज का पड़ाव यहीं था। श्री बहनजी को आज कुछ ज्वर हो आया। उन्हें गत जुलाई मास में मलेरिया का तीव्र आक्रमण हुआ था और तब से यदा-कदा कुछ ज्वर हो जाया करता था, अतः चिन्ता हो रही थी।

मार्ग में इस तूफानी ऋतु के पश्चात् आती प्रथम डाक मिली, जो इस बात की सूचक थी कि आगे का पथ भी अवश्य ही चालू हो गया है, तथापि वह इस बात की गारंटी नहीं थी कि मार्ग-स्थिति अब भीषण नहीं रही। डाक के साथ मेरे नाम से बहुत पहले लिखा शीला का पत्र भी था।

पाण्डुकेश्वर में स्वभावतः शीत कम था। श्री बदरीनाथ की उस हिमानी ऋतु के अनुभव के पश्चात् तो उसे 'गुलाबी जाड़ा' ही कहना अधिक उपयुक्त था। क्रमशः सन्ध्या बीत चली, शान्तिमयी रजनी का आगमन हुआ और दिनभर की थकान भूलकर लोग विश्रान्ति की गोद में खो गये।

१५ अक्तूबर, सोमवार

प्रातः ६ बजे हम लोग जोशी मठ के लिए चले। भगवान् की कृपा से श्री बहनजी का ज्वर तो उतर गया था, किन्तु अभी खिन्नता थी, तथापि उन्हें पैदल चलना ही स्वीकार था। प्रायः ४-५ मील पश्चात् गंगाबाबू (श्री गंगाशरण सिंह, एम० पी०, अध्यक्ष, प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी) आते दीख पड़े। श्री भाईजी से उनकी कुछ देर बातें होती रहीं। मार्ग की कठिनाइयों के कारण उन्हें आगे जाने से मना किया गया, किन्तु अब कुछ दूर के लिए श्री बदरीनाथ का दर्शन छोड़ना उन्हें स्वीकार न था। अतः कुछ देर वहाँ रुककर वे श्री बदरीनाथ की ओर और हम लोग जोशी मठ की ओर बढ़ चले।

मार्ग में प्रकृति की यह विकट कृति यत्र-तत्र सर्वत्र देखने को मिलती। गाँवों की उजड़ी सूरत, चट्टियों की बिखरी छावनी, उदास दीवालें अपनी कहानी आप सुनाते। ऋतु अनुकूल हो जाने से अब स्थान-स्थान पर लोग अपनी क्षति का अन्दाजा लगाने तथा सुधार-कार्य में जुटे दिखाई देते। पाण्डुकेश्वर से एक मील आगे विष्णुप्रयाग आता है। वहाँ उजड़े-उखड़े घरों, दूकानों से परे एक महात्मा की छोटी-सी कुटिया विश्व-वैचित्र्य का गान गाती अभी भी

अक्षत खड़ी थी। तूफान के उस ताण्डव में न महात्मा जी ने उस कुटिया को त्यागा और न कुटिया ने उन्हें।

जोशी मठ पहुँचते-पहुँचते मध्याह्न का समय हो गया। यहाँ सूचना मिली कि २५ मील दूर नेती वैली में भी श्री बदरीनाथ के समीपस्थ माना चौकी के समान ही भीषण क्षति हुई है। पचीस व्यक्ति वहाँ बर्फ से दबकर मर गये थे।

१६ अक्तूबर, मंगलवार

जोशी मठ में प्रातःकाल सर्वोदय-सभा हुई। तत्पश्चात् आज के पड़ाव हेलंग के लिए प्रस्थान हुआ। सब लोग तो वहाँ प्रायः १० बजे पहुँच गये, किन्तु मार्ग में आयोजित एक और सभा के कारण श्री भाईजी के पहुँचने में कुछ विलम्ब हुआ।

धूप निखरी थी और पास ही स्वच्छ जल भी उपलब्ध था, अतः आज एक आवश्यक कार्य यह भी हुआ कि सबके कपड़े धोये, सुखाये गये। संध्या समय सर्वोदय-सभा हुई। प्रायः ९ बजे रात्रि में श्री भाईजी के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में गया से प्रेषित भूपजी का तार मिला। यह तार दिनांक १० अक्तूबर को दिया गया था, किन्तु आज इतने दिनों पर यह पीपलकोटि पहुँचा था। यह सब प्रकृति देवी की कृपा का ही फल था। पीपल-कोटि से पोस्ट-मास्टर ने विशेष वाहक द्वारा इसे इस समय यहाँ भेजवाने की कृपा की थी। नगरों में रात के ९ बजे तो सध्या ही मानी जाती है, किन्तु इन जंगल-पहाड़ों में बीहड़ मार्गों पर एकाकी चलनेवालों के लिए रात की यह वेला दूसरा ही अर्थ रखती है। चपरासी को भोजन दिलवाकर श्री भाईजी तार लिये अन्दर आये और हँसते हुए तार मिलने की बात बतायी।

भोजनोपरान्त डाँडीवालों ने कीर्तन जमाया। इस यात्रा में आज यह उनकी अन्तिम रात्रि थी। कल पीपलकोटि पहुँचकर उनका काम पूरा हो जाता था। प्रायः डेढ़-दो घण्टे तक वे सब मिलकर हिन्दी और गढ़वाली भजन गाते रहे। भाषा भिन्न होते हुए भी भाव तो एक ही थे। आवरण दो थे, आत्मा एक था। यही तो वह वस्तु है, जो भारत को भारत बनाये रखती है।

१७ अक्तूबर, बुधवार

हेलंग से पीपलकोटि तक जो परिचित मार्ग था, वह तो इतना ध्वस्त हो चुका था कि उधर से अभी भी जाने योग्य सुधार न हो पाया था। अस्तु, एक दूसरे मार्ग से ही चले, जो मोटर के लिए नया बनाया जा रहा है और हेलंग तक प्रायः तैयार हो चुका है। इधर से दूरी कुछ अधिक हो जाती है। इन नये बने मार्ग की भी बुरी दशा थी। किसी प्रकार प्रायः ११ बजे पीपलकोटि पहुँचे। भोजन, विश्राम के पश्चात् यहाँ से चलने के पूर्व शिल्प-कला-मंदिर देखने गये। यहाँ पत्थर की सुन्दर मूर्तियाँ एवं उपयोग की अन्य वस्तुएँ—पथरी इत्यादि—निर्मित होती है।

अब तो मोटर से यात्रा आरम्भ हुई। यहाँ से १७ मील दूर नन्दप्रयाग में सायं ७ बजे सभा का आयोजन था। अस्तु, समय से वहाँ जा पहुँचे। प्रायः दो घण्टे तक सभा चलती रही। आज का रात्रि-पड़ाव नन्दप्रयाग में ही था।

१८ अक्तूबर, गुरुवार

जलपान के पश्चात् प्रायः ७ बजे नन्दप्रयाग से चले। मार्ग की दुरवस्था के कारण १२ मील दूर कर्णप्रयाग पहुँचने में ही १०

बज गया। मार्ग में आध घण्टे के लिए एक सर्वोदय-सभा भी हुई। ऐसी अनपेक्षित सभाएँ तो अक्सर ही हुआ करती थीं। इन अवसरों पर प्रबन्धकों के विधान का बाँध तोड़कर श्री भाईजी की शालीनता आगे बढ जाती और अपने प्रिय नेता के मुख से दो शब्द सुनने को लालायित जनता की ही जीत होती।

कर्णप्रयाग पहुँचकर अलखनन्दा और पिंडर गंगा के संगम में स्नान हुआ। जाते समय यहाँ की निर्मल जल-शोभा देखकर अवगाहन की जो स्वगत कामना स्फुरित हो उठी थी, उसकी पूर्ति का अवसर मानो आज स्वतः प्राप्त हो गया। स्नान, भोजन से निवृत्त होकर गोचर के लिए चले। यह स्थान रुद्रप्रयाग और कर्णप्रयाग के मार्ग में गढ़वाल का प्रसिद्ध मैदानी क्षेत्र है। कुछ वर्ष पूर्व यहाँ तक श्री बदरी-केदार के यात्रियों के लिए वायुयान की व्यवस्था थी, किन्तु पीछे उसे स्थगित कर देना पड़ा।

कर्णप्रयाग से एक मील चलने पर दो मील तक मार्ग इतना टूटा हुआ था कि मोटर नहीं जा सकती थी, अतः उसे पैदल ही पार करना पड़ा। उधर दूसरी मोटर प्रस्तुत थी, उससे ४ बजे गोचर पहुँचे। यहाँ एक विशाल सभा आयोजित थी। श्री भाईजी के पहुँचते ही उनकी जय-ध्वनि से आकाश प्रतिध्वनित हो उठा। प्रायः छह बजे तक यह सभा चलती रही।

यह अलौकिक पूर्णिमा

कुछ समय तक कुमुदराज की अखण्ड शोभा देखते बैठी। आज शरद्-पूर्णिमा की वह मनोहर रात्रि थी, जब धरती और आकाश को मिलाती निर्मल सुधा-धारा समग्र दिशाओं को आप्लावित

कर उठती है, जब इस संसार में ही स्वर्ग को लजाता शोभा का समुद्र उमड़ पड़ता है और जब अपनी ही ज्योत्स्ना के छलनामय धवल महल में मानो बन्दी बना चाँद किसीकी पवित्र स्मृति में एक दिव्यलोक की सृष्टि करता है। आज वह अद्भुत सुधा-राका की जब चन्द्र-किरणों पर आरोहित प्रवृत्ति की दिव्य वीणा का मधुर स्वर दिग्दिगन्त में गूँज उठता है और उसके स्वर पर झूम उठता है वह अमर गान, जिसे गाकर जीवन्मुक्त शुक भी धन्य हो उठे। स्वयं सर्वेश्वर के मुस्कान से सुसज्जित उस अलौकिक रात्रि की शोभा का वर्णन कौन कर सकता है ? जिस सौभाग्य-प्रदा यामिनी में भगवान् की अपरिमेय कृपा मूर्तिमती होकर भक्तों की जीवन-वीणा के अमर झंकार पर बार-बार थिरक उठी थी, उसीकी स्मृति-वाहिका यह आश्विन-पूर्णिमा रास-पूर्णिमा के नाम से प्रसिद्ध है।

इसे कोजागरी पूर्णिमा भी कहते हैं। प्रसिद्धि है कि आज के मधुर निशीथ में पद्मपत्र जैसे श्वेत किरणों से अवतरित होकर 'को जागरति' कहती हुई स्वयं श्री लक्ष्मी महारानी उस व्यक्ति को अक्षय सम्पत्ति प्रदान करती हैं, जिसे वे जगा रहकर इस सुधा-धारा का सेवन करता हुआ पाती है। आज की इस निखरी चाँदनी में रात्रिपर्यन्त श्वेत वस्तुएँ, विशेषतः खीर, दूध, श्वेत फल इत्यादि रखकर सूर्योदय के पूर्व खाने का माहात्म्य है। कहते है कि आज की रात्रि में चन्द्रमा से विशेष अमृत-स्राव होता है और उसके सेवन से आयुरारोग्य की वृद्धि होती है। रात्रिपर्यन्त न सही, किन्तु कम-से-कम २-४ घण्टे इस प्रथा का पालन प्रायः प्रत्येक हिंदू-घरों में किया जाता है। अपने इष्टदेव

को श्वेत वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर खुली चाँदनी में बिठाते हैं तथा स्वयं भी श्वेत परिधान धारण कर प्रायः मध्य रात्रिपर्यन्त, जब चन्द्र-किरणें सीधी होकर पृथ्वी पर आती हैं, कीर्तन-संगीत का आयोजन करते है। उस विराट् से एकाकार होने की यह कितनी सुन्दर कल्पना है। मुक्ता जैसी धुली चाँदनी, उसीके समरूप समस्त श्वेतोपकरण। वातावरण स्वच्छ, वस्त्राभरण स्वच्छ, खाद्योपकरण स्वच्छ, तन स्वच्छ, तो फिर मन भी स्वच्छ क्यों न हो ?

इस पूर्णिमा जैसी कोई पूर्णिमा नहीं और १५ दिनों पश्चात् आनेवाली अमावस्या जैसी कोई अमा नहीं। वर्षाऋतु समाप्त हो चुकती है, आकाश धुलकर आरसी-सा स्वच्छ हो जाता है, मेघाच्छादन हटते ही किसलय के समान व्योम की शोभा प्रस्फुटित हो उठती है, पृथ्वी पंकहीन होकर स्वच्छ दीखने लगती है, जलाशयों का जल निर्मल हो जाता है, वनस्पति-जगत् नव विकसित हरे पत्तियों के परिधान के ऊपर रंग-बिरंगे कुसुमों का श्रृङ्गार सजाता है और शीतल मन्द सुगन्ध पवन नवजीवन का संदेश सुनाता और डोलता है, तभी ये दोनों त्योहार आते हैं। आज की रजत ज्योत्स्ना जैसे अनुपमेय होती है, वैसे ही उस अमा की ताराखचित शोभा भी निराली ही होती है। आकाश की उस अनन्त दीपमालिका के अनुरूप ही इस धरती पर अपनी छोटी-सी दीवाली सजाकर मानव-मन पुनः उस विराट् से एकत्व अनुभव करने का उपक्रम करता है। कितना महान् है वह उद्देश्य और कितने महान् हैं ये पर्व।

आज हिमालय के इस उन्मुक्त प्राङ्गण में राकेश की वह

मधुर सुषमा कुछ अधिक ही उज्ज्वल हो उठी थी। जिधर दृष्टि जाती, उधर ही शोभा की अपार राशि बिखरी दिखाई देती। एक बार सन् १९४३ में अलमोड़ा में भी यही रात्रि आयी थी। उस अवसर पर उदयशंकर के छाया-नृत्य का भी आयोजन था। दो विशाल चीड़ वृक्षों के मध्य से पूर्ण चन्द्र मुस्करा रहा था और उसके प्रकाश में दूरस्थित हीरक-वेश-धारी हिम-शिखर अपनी शोभा पर स्वयं ही मुग्ध थे। सामने एक श्वेत पट खिचा था और उस पर उदयशंकर की छायामय कला रामायण की कथाओं में अभिव्यक्त हो रही थी। रामायण के मधुर उच्चार के साथ मृदु संगीत तिर रहा था। एक अद्भुत समा थी। आज हिमालय के इस मनोरम प्रदेश में वही रजत-पूर्णिमा देखकर मुझे उस अतीत का चित्र अनायास ही स्मरण हो उठा।

प्रथानुसार श्री बहनजी ने भी चाँदनी में खीर रखी, जो प्रातःकाल सब लोगों को प्रसादरूप में दी गयी।

१६ अक्तूबर, शुक्रवार

गोचर से जलपान के पश्चात् प्रायः ९ बजे चलने की तैयारी हुई। शशि बहन अचानक अस्वस्थ हो गयी थीं, अतः उन्हें अस्पताल ले जाया गया और उनकी देखरेख के लिए उनके पति श्री मानसिंह रावत गोचर में ही रुक गये। रुद्रप्रयाग के इधर ही एक डाक-बंगले में भोजन के लिए रुके। वहाँ से चलकर १ बजे रुद्रप्रयाग पहुँचे। रुद्रप्रयाग श्री केदारनाथ एवं श्री बदरीनाथ के मार्गों का सङ्गम-स्थल है। कुछ समय यहाँ डाक लेने में लगा, तत्पश्चात् आज के पड़ाव श्रीनगर के लिए प्रस्थान हुआ। एक मील आगे मार्ग की दुरवस्था के कारण जीप का प्रबन्ध किया

गया था। उससे भी दो मील से अधिक जाना सम्भव न हुआ। अब भगवान् के दिये वाहन पैरों से चलने के अतिरिक्त कोई उपाय न था। पाँच मील का मार्ग पैदल ही तय करना पड़ा। वस्तुतः ध्वस्त मार्ग तो कुछ ही दूर तक होते, इनके मध्य में अच्छा मार्ग होता, जिन पर मोटर आसानी से चल सकती थी; किन्तु कठिनाई तो यह थी कि दोनों ओर टूटे हुए मार्गों के मध्य मोटर पहुँचती कैसे। हेलीकॉप्टर के डैनें अभी मोटरों में तो लगे नहीं। इतना मार्ग तय करते-न-करते संध्या उतर आयी। आज का रास्ता मानो मीलों की कथित लम्बाई को मात दे गया था। सब लोग थक चले थे। प्रायः ६ बजे इन ध्वस्त मार्ग-खण्डों को पार करते ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहाँ मोटर प्रस्तुत थी। कुछ देर में मोटर चली।

अब चाँद भी निकल आया था और समस्त विश्व की क्लांति को प्रक्षालित करता वह दो गिरि-खण्डों के मध्य से झाँक रहा था। समस्त पर्वत-श्रेणी उसकी रेशमी रश्मियों से क्रमशः अनुरञ्जित होती जा रही थी। इस वर्ष दो शरद्-पूर्णिमा मानी गयी थी। आज भी अखण्डित राकेश कल के समान ही नील नभ में मुस्करा रहे थे। सृष्टि के रंगमञ्च पर एक अद्भुत् नाट्यावलि का सूत्रपात हो चुका था और उसकी मनोहर झाँकी जड़-चेतन सभी को लुभा रही थी। नाचते हुए मार्ग पर घूमती हुई बस कभी पर्वत की ओट में चली जाती, किन्तु आगे बढ़ते ही पुनः निशापति मुस्करा-कर स्वागत करते दिखाई देते।

एक घण्टे में ही पूर्वपरिचित श्रीनगर आ पहुँचे।

श्रीनगर से नजीबाबाद

२० अक्तूबर, शनिवार

प्रातःकाल का कार्यक्रम श्रीनगर में ही था। ८ से १० तक सर्वोदय-सभा होती रही। तत्पश्चात् भोजन कर आज के पड़ाव पौड़ी के लिए प्रस्थान हुआ, जो इस यात्रा का अन्तिम पड़ाव था। श्रीनगर से एक मार्ग हरद्वार जाता है और दूसरा पौड़ी-कोटद्वार होते नजीबाबाद गया है, जो इधर का मेन लाइन का जंकशन है। कोटद्वार से नजीबाबाद तक एक ब्राञ्च लाइन भी गयी है। श्रीनगर से पौड़ी तक का मार्ग बहुत अच्छा है, दृश्यावलि अत्यन्त सुन्दर है। ऐसा लगता है, मानो किसी उद्यान के मध्य से जा रहे हों।

प्रायः दो बजे पौड़ी पहुँचे। यह इधर का एक नया बसा हुआ मनोरम हिल-स्टेशन है, जो समुद्र-तल से ७,००० फीट की ऊँचाई पर अवस्थित है। दोनों ओर दूर तक फैली उन्मुक्त उपत्यकाएँ हैं, तथा उत्तर की ओर चौखम्भा एवं अन्य शिखरों की पंक्तिबद्ध शोभा परिलक्षित होती है। अमृत-सा शीतल और हल्का पर्वतीय वायु झपाटे से बहा करता है। मसूरी जैसी चमक-दमक तो यहाँ नहीं है, किन्तु शोर-गुल से परे यह स्थान किसी भी अन्य हिल-स्टेशनों से कम सुन्दर नहीं है।

यहाँ श्री भाईजी के स्वागत का भव्य प्रबन्ध था। लगता था, मानो उनके आगमन से पौड़ी के जीवन में उमंग की नयी लहर दौड़ गयी हो। संध्या ४½ से ७ बजे तक सर्वोदय-सभा हुई, जिसमें विशाल जन-समुदाय एकत्र था। आज का यही अन्तिम कार्यक्रम था।

२१ अक्तूबर, रविवार

आज हिमालय की गोद में इस यात्रा का अन्तिम प्रभात आया था। सामने खड़े उज्ज्वल हिम-शिखरों पर अरुणोदय का सुनहला प्रकाश फैलकर विदा ले चुका था और अब उन पर दिनकर की प्रखर किरणें झलमलाने लगी थीं। दूर तक फैली उपत्यकाओं में भी धीरे-धीरे दिन उतरता आ रहा था और चारों ओर अन्धकार में डूबी चिन्तित-सी हरीतिमा अपने सहज सौंदर्य के साथ निखरती चली आ रही थी। पीयूषवर्षी उन्मुक्त पवन बह रहा था और किसी ओर से आता निर्झर का मन्द मधुर संगीत वातावरण में व्याप्त हो रहा था। ऋषि-महर्षियों से सुसेवित हिमालय की यही वे दिव्य निधियाँ है, जिनका सौंदर्य एक बार मन में छा गया, तो फिर जीवनपर्यन्त वह उसे अपना बना लेता है।

इतने दिनों तक इन पवित्र दृश्यों के सान्निध्य का, उनमें घूमने का, रहने का सौभाग्य मिला था। अब तो ये ही दृश्य इन आँखों में घूमा-रहा करेंगे। इस विदा की वेला में ऐसा लगता था, मानो युग-युग से हमारा इनका साथ हो। हिमालय में कहते है, देवताओं का वास-स्थल है। जैसा अनुपम सौंदर्य है इसका, उसे देखते हुए तो मै इसे निर्विवाद मान लेने को प्रस्तुत हूँ। हिमालय अर्थात् पवित्र सौंदर्य का प्रतीक, हिमालय अर्थात् महान् गाम्भीर्य की अटूट शृङ्खला, हिमालय अर्थात् प्रकृति का अनुपम शृङ्गार, विराट् का मधुरकाव्य, हिमालय अर्थात् हमारी संस्कृति का अक्षुण्ण गौरव, सृष्टि के अनेकानेक रहस्यों का तटस्थ द्रष्टा, व्यास आदि परमहंसों का, अनेकानेक सिद्ध-साधकों का, भक्त भागवतों का दिव्य पीठ, कैलाश, मानसरोवर, गंगा, यमुना जैसी अलौकिक नदियों का

उद्गम, साकार पुण्य। जैसे एक वार अमृत का स्वाद मिल जाने पर भुलाया नहीं जा सकता, सज्जनों की संगति जैसे जीवनपर्यन्त विस्मृत नहीं हो सकती, वैसे हिमालय की स्मृति भी अमिट है, अक्षय है।

जलपान के पश्चात् प्रायः ७ वजे यहाँ से प्रस्थान का समय आ पहुँचा। महिमामय गिरिराज के चरणों में मस्तक स्वयं ही झुक गया। अपने ऊँचे उठे हिम-शिखरों द्वारा वे भी आशीर्वाद देते प्रतीत हुए। श्री वदरी-केदार एवं उनके अंशभूत वे सभी देवी-देवता, जिनके सान्निध्य से हिमवान् का माहात्म्य शास्त्रों में इतना गौरवान्वित हो उठा, तपःपूत वे समस्त स्थल, जहाँ मुझे जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और न भी हुआ, सनातन काल से अद्यतन पर्यन्त वे तपोनिष्ठ महात्मागण, जो परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से इन शैलों में रहते आये, गंगा आदि परम पवित्र नदियाँ, सुधा भरित दिव्य औषधियों से युक्त ये लता-पत्र, पशु-पक्षी, वे सरल हृदय पहाड़ी भाई, जिनकी सहायता के विना यह यात्रा ही असम्भव होती, कहाँ तक कहूँ, हिमवान् के अंगभूत समस्त जड़-चेतन को मन-ही-मन प्रणिपात कर मैने विदा ली।

मोटर खुलने ही को थी कि गोचर से श्री मानसिंह रावत भी अपनी पत्नी की देख-रेख की व्यवस्था कर आ पहुँचे। प्रायः १ घण्टे तक चक्करदार पहाड़ी मार्ग से चलने पर श्यामवर्णा नयार दीख पड़ी। अब यह सुन्दर नदी पथ-प्रदर्शिका बनी साथ-साथ चल रही थी। कुछ दूर चलकर एक पुल मिला, जो विगत तूफान में अरक्षित हो चुका था, अतः मोटर इधर ही छोड़ देनी पड़ी। पुल के ऊपर से नयार का सौंदर्य और भी निखर उठा

था। श्याम वर्ण के किञ्चित् उभरे कतिपय शैल-खण्डों से टकराकर लहरें दुग्ध-धवला होती फैल-फैल जातीं, हवा की झकोरें हिलोर पैदा करती अठखेलियाँ करतीं और मानो इन सभी से बेखबर नयार अपने ही आनन्द में मग्न गाती-इठलाती चली जाती।

"काँटों-फूलों से उलझ-सुलझ भँवरों का सुन मन-हरन मंत्र।
छाती अवनी की छाती पर वह गाती जाती थी स्वतंत्र॥"

पुल पार कर दूसरी मोटर मिली। अब बायीं ओर हो गयी। नयार के किनारे-किनारे चलकर प्रायः १० बजे सतपुली पहुँचे। यहाँ भी एक क्षति-ग्रस्त पुल मिला, अतः पुनः यह मोटर भी छोड़कर उसे पैदल पार करना पड़ा। यहाँ पहुँचकर एक कारुणिक कहानी सुनने को मिली। सन् १९४९ में इसी स्थान पर कितने ही बस-चालक अपनी बसों के साथ ही विकराल रूप धारिणी नयार के उदर में विलीन हो गये थे। बस स्टैंड को प्रायः बाढ़ का जल छू नहीं पाता, किन्तु होनी को कौन जान सकता है? जिन नदियों की सुषमा देखकर मनुष्य आत्म-विभोर हो उठता है, जिनकी मुक्ता-गुंफित तरंगों में कितने ही अमर काव्यों की सृष्टि होती है, वही नदियाँ बाढ की दशा में कैसी भयङ्कर सिद्ध होती हैं। गाँव के गाँव बह जाते हैं, हाहाकार मच जाता है और मनुष्य के प्राण त्राहि-त्राहि पुकार उठते है। मानो सुन्दर और असुन्दर, मधुर और विकराल, जीवन और मृत्यु—ये सब एक सिक्के के ही दो पहलू हों। जिन पुष्पों की शोभा देखकर मनुष्य मुग्ध हो उठता है, सम्भव है, उनमें ही विकराल भुजंग छिपा बैठा हो। जैसे रात और दिन मिलकर पृथ्वी की

यात्रा पूरी होती है, वैसे दुःख और सुख मिलकर ही संसार चलता है। उस दुर्घटना की एक स्मारक शिला भी वहाँ लगी हुई है।

सतपुली में दो घण्टे रुककर भोजन-विश्राम हुआ। इसीके मध्य में एक सर्वोदय-सभा भी हुई। तत्पश्चात् यहाँ से चलकर प्रायः ३ वजे कोटद्वार पहुँचे। यहाँ भी संध्या समय एक सर्वोदय-सभा हुई। इस यात्रा का यह भी एक वड़ा लाभ था कि प्रायः प्रत्येक दिन एक-दो सभाओं में सम्मिलित होने और सर्वोदय विचार सुनने को मिलता। इस यात्रा की यही अन्तिम सभा थी। अब कुछ घण्टों में यह साथ भी छूटनेवाला था, किन्तु इसकी स्मृति तो जीवन की चिर-निधि के रूप में सदैव ही पास रहनेवाली थी।

गत वर्ष मसूरी में देहरादून के एक भाई ने श्री जयप्रकाशजी के कुछ फोटो लिये थे। उसकी इन्लार्ज्ड प्रतियाँ लेकर वे कोटद्वार आये हुए थे। उसमें की कुछ प्रतियाँ हम लोगों ने लीं तथा श्री भाईजी ने अपनी ओर से एक-एक प्रति दीदी को, मुन्नी को और मुझे दी।

प्रायः ८½ वजे अब १० मील दूर नजीबाबाद स्टेशन के लिए प्रस्थान हुआ। पहाड़ों पर कुछ दिनों रहकर नीचे उतरने में भी एक नूतनता अनुभव होती है। जन्मकाल से आँखें जिस समतल भूभाग की अभ्यस्त हो रहती हैं, उनका दृश्य भी एक असाधारण रूप ले लेता है। वायु का परिवर्तन भी स्पष्ट लक्षित हो रहा था और कार्तिक का महीना होते हुए भी कुछ उष्णता अनुभव हो रही थी। ठीक उसी प्रकार, जैसे अधिक मीठा खा लेने पर मिठाई भी कभी फीकी मालूम होती है। अब सीधे चौड़े मार्ग पर मोटर अबाधित रूप से भागी जा रही थी। चारों ओर गहन

अन्धकार था, केवल सामने सड़क पर ही हेड लाइट का तीव्र आलोक चमक रहा था। कुछ दूर पर बैलगाड़ी का काफिला मिला, जो मोटर के हॉर्न से एक ओर दुबका हुआ-सा धीर मंथर गति से बढ़ता चला जा रहा था। कोई भाग-दौड़ नहीं थी मानो उनके जीवन में।

आधे घण्टे के अभ्यन्तर ही स्टेशन का प्रकाश चमक उठा। १० मील की दूरी भी कितनी! श्री भाईजी दिल्ली जा रहे थे। उनकी ट्रेन ९-३० पर खुलती थी। श्री माताजी को वेटिंगरूम में बिठाकर दूसरे प्लेटफार्म पर आये। अब गाड़ी भी आ पहुँची। सब लोगों से प्रेमपूर्वक मिलकर श्री बहनजी और श्री भाईजी ट्रेन में चढ़े। श्री द्वारको भाई भी उनके साथ ही जा रहे थे। ट्रेन खुली और क्रमशः दूर होती लाल बत्ती भी अब 'अदृश्य हो गयी। इस छोटे से स्टेशन पर ट्रेन आने से जो जीवन जाग उठा था, वह मानो पुनः सो गया। हम लोगों की ट्रेन आने में अभी कुछ देर थी। आखिर वह भी आयी। श्री मानसिंह रावत तथा अन्य भाई, जो पहुँचाने आये थे, वापस चले गये। श्री गंगाधर मठानी तो साथ ही लखनऊ जा रहे थे।

घर की ओर

२२ अक्तूबर, सोमवार

श्री माताजी प्रातःकाल लखनऊ में उतर गयीं। उन्हें पंजाब-मेल से सीधे पटना जाना था। उनके पुत्र विदेश से शिक्षा ग्रहण कर लौट रहे थे, अतः उन्हें घर पहुँचने की शीघ्रता थी। अन्यथा दीदी के साथ वे भी अयोध्या जातीं। श्री गंगाधर मठानी माताजी

के साथ थे ही, अतः असुविधा की कोई बात न थी। उन्हें प्रणाम कर सब लोगों ने सजल नयन उनसे विदा ली। श्री ओमप्रकाश भाई तो रात में ही अपने घर जाने के लिए मुरादाबाद में उतर गये थे।

प्रायः ११ बजे दिन में ट्रेन अयोध्या-स्टेशन पर खड़ी थी। भूतल पर अवतरित सर्वेश्वर की लीला-भूमि अयोध्या! मानो केवल एक स्थानविशेष का ही यह संज्ञाशब्द न हो, मानो समस्त भारत ही उसमें पूर्ण हो उठा हो। जो कुछ श्रेष्ठ है, सत्य है, आदर्श है, ग्राह्य है, वह सब मानो इस एक ही शब्द में निहित हो। अयोध्या शब्द का मानो अर्थ ही हो सत्यनिष्ठा का अपार सागर, प्रेम एवं त्याग का अद्वितीय वृत्त, लोक-रंजन के अडिग संकल्प से वेष्टित सुख-समृद्धि के आदर्श राज्य का मूर्तरूप! मैंने मन ही मन आर्य-संस्कृति के अतीत गौरव इस दिव्य भूमि को प्रणाम किया। दीदी तथा मुन्नी को यहीं उतरना था। माताप्रसादजी उनके साथ थे। मेरी भी इच्छा अयोध्या उतरने की थी, किन्तु वह सम्भव न था। अस्तु, उन लोगों से विदा ली। इतने दिनों तक हम लोग एक परिवार जैसे एक साथ रहे थे, दीदी तो हमारी जैसे दीदी ही थीं। ऐसा लग रहा था, मानो कुछ खो गया हो।

श्री भाईजी ने गया में तार दे दिया था। आज करवा चतुर्थी का व्रत होने के कारण भोजन की ओर से निश्चिन्त थी। ८½ बजे ट्रेन गया-स्टेशन में प्रविष्ट हो रही थी। राम, लखन तथा पुष्पा पर नजर पड़ी। अन्य लोगों के साथ श्री पं० रामावतार मिश्र भी स्टेशन पधारे थे। आप संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् एवं

सात्त्विक व्यक्ति हैं। हम लोगों पर तो आपका स्नेह एक बुजुर्ग जैसा ही रहता है।

घर पहुँचकर गैलरी में प्रविष्ट करते-न-करते श्री वल्लभ स्वामी, काका अत्रे तथा अन्य भाइयों के दर्शन हुए। लगभग दो वर्ष से 'अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ' हमारे घर में ही रह रहा है और यह भगवान् की कृपा ही है कि सज्जनों का यह समुदाय हम लोगों का एक बृहत् परिवार ही बन गया है। रमते योगी और बहते पानी का कोई ठिकाना नहीं, वैसे यह संघ भी कभी दूसरे स्थान पर चला जा सकता है। किन्तु 'सत्संगति महिमा नहिं गोई' सज्जनों की संगति का एक क्षण भी अमूल्य है, अलम् है। अब पास ही खड़ी शीला को देखा। वह तो मेरे ही कारण अब तक हैदराबाद न जा सकी थी। इस प्रकार १ महीने ७ दिन पर भगवान् की कृपा से यह यात्रा सकुशल सानन्द समाप्त हुई।



भाषण-सार

यात्रा में विभिन्न स्थानों पर दिये गये श्री जयप्रकाशजी के भाषणों का सार

ऋषिकेश
१६-६-'५६

सूर्य, प्रकाश और जल इत्यादि की तरह भूमि भी भगवान् की है, उस पर सबका हक है, सबको भूमि मिलनी चाहिए। अपने देश में कोई भी भूमिहीन नहीं रहना चाहिए। जिनके पास भूमि है, वे उन्हें अपने उन भाइयों को दें, जिनके पास नहीं है। जो दें, वह भीख के रूप में नहीं, गाँव का हिस्सा मानकर दें; अपनी मिलकियत मानकर नहीं। हमारे पास विद्या है, तो वह भी लोक-सेवा और लोक-संग्रह के लिए होनी चाहिए, पेट भरने के लिए नहीं। जिनके पास जमीन नहीं है, विद्या नहीं है, उनके पास श्रम-शक्ति है, वे श्रमदान करें। श्रम-शक्ति भी तो समाज की सेवा से ही मिली है। किसीने दूध पैदा किया, किसीने अन्न पैदा किया, हमने सब चीजों का उपभोग करके ही शक्ति प्राप्त की है। शक्ति भी समाज के सहयोग से ही मिलती

है। इसलिए उसे निरहंकार होकर समाज की सेवा में लगायें। एक व्यक्ति सबके लिए और सब हरएक के लिए सोचेंगे, तो समाज में सबके सब सुखी होंगे।

सर्वोदय का यह आदर्श तो बहुत ऊँचा है, हिमालय की उस चोटी जैसा ऊँचा। प्रश्न आपकी कमजोरी का है। हमारे जैसे लूले, लँगड़े कैसे चढ़ेंगे? जन-साधारण के लिए यह बिल्कुल असाध्य-सा लगता है। हनुमान् जैसे थोड़े-से साधु-महात्मा भले ही एक छलाँग में ऊपर के शिखर पर जा पहुँचें। बुद्धि जरूर स्वीकार करती है, किन्तु हम उसके योग्य नहीं। गांधीजी ने कहा: "मनुष्य ईश्वर का स्वरूप है। संस्कारों की मैली धूल जमी है, उसे दूर करो।" अहिंसा के आन्दोलन का यह अटल विश्वास है कि सब कोई ऊपर उठ सकता है। हमारे जैसे गृहस्थों के आरोहण का गाधीजी ने मार्ग प्रशस्त कर दिया है। धर्म अलग चीज हो और दूकान चलाना, व्यापार करना इत्यादि अलग, ऐसा नहीं है। धर्म के लिए एकान्त जरूरी नहीं है। धर्म की संस्थापना तो युद्धभूमि में हुई है। दोनों ओर युद्ध के लिए तैयार सेनाएँ खड़ी है और ठीक बीच में भगवान् कृष्ण गीता-धर्म समझा रहे है। गृहस्थ का धर्म दुनिया के कामों से उसे अलग नहीं करता, वही मानव-धर्म है, सनातन है, अनादि काल से है और सबके लिए है।

सत्याग्रह का अर्थ है सत्यनिष्ठ जीवन। हमारे देश में अंग्रेजों का राज्य था। गांधीजी ने कहा: "सत्य और अहिंसा से अंग्रेजी राज्य के साथ लडना है।" यह एक ऊँचा विचार था। उन्होंने उसके लिए कार्यक्रम ऐसा बनाया कि एक बच्चा

भी अमल कर सके। नमक-सत्याग्रह शुरू किया। एक वच्चा भी इस पर अमल कर सकता था। सन् १९३०-३२ के आन्दोलन में हमने देखा, छोटे-छोटे वच्चे भी झण्डा लेकर आन्दोलनों में घुस जाते थे और चिल्लाते थे कि हमने नमक-कानून तोड़ दिया।

दो महायुद्ध हो चुके और तीसरा सिर पर मँडरा रहा है। लोग भयभीत है, त्रस्त हैं। शान्ति का रास्ता खोज रहे हैं। शान्ति फौजों की संख्या कम करने से नहीं होती। मान लीज़िये, रूस ने अपनी सेना में १० हजार आदमी कम कर दिये। हुआ क्या? सेना से हटाया, तो शस्त्र वनाने के कारखानों में लगा दिया। बड़े-बड़े कारखानों में मजदूरों की कमी पूरी करने में उन्हें लगा दिया। ये सारे कारखाने हथियार बनाने में लगे है। हथियार लड़ाई के, खेती के नहीं।

इतना अवश्य है कि दुनिया में एक हवा फैल गयी है। बड़े और छोटे सभी राज्यों के लोग चिन्तित हैं। सब सोच रहे है कि विश्व में शान्ति कैसे हो। सेना में कटौती हो, निरस्त्रीकरण हो, अच्छा है। ऐसे प्रयत्नों का भी महत्त्व है। लेकिन राष्ट्रों के बीच समझौता हो गया, सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर हो गये, आइसन-हावर ने हस्ताक्षर कर दिये, वुल्गानिन और नेहरूजी ने हस्ताक्षर कर दिये, इतना करने से अब युद्ध नहीं होगा, युद्ध से बच गये, यह मान लेना बड़ी नादानी है। इतने से बचाव नहीं हो सकता।

हमें गहराई के साथ संघर्ष के कारणों को खोजना होगा। युद्ध के कारण यदि गहराई से देखें, तो हमारे-आपके हृदय में है। तक वहाँ से संघर्ष की जड़ नहीं काटते, मनुष्य कभी सुखी

नहीं हो सकता। मानव-जीवन में शान्ति नहीं आ सकती। हमारे-आपके दिल में जो स्वार्थ और मोह बैठा हुआ है, वही इस विश्व-व्यापी संघर्ष की जड़ है। जब तक हमारा जीवन स्वार्थपरता पर टिका है, हरएक अपने अपने लिए ही सोचता है। सब अपनी और अपने बाल-बच्चों की ही फिक्र करना अपना कर्तव्य और धर्म मानते है। जब स्वार्थ ही मानव-जीवन का सबसे बड़ा देवता बना रहेगा, मानव सुखी नहीं होगा, समाज में शान्ति नहीं होगी।

सृष्टि में मनुष्य एक विचित्र प्रकार का जीव है। उसकी विचित्रता यह है कि वह समाज में ही जन्मता और मरता है। जंगल में और बहुत से प्राणी है। अकेले रहते है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। मनुष्य का सब कुछ समाज का दिया हुआ है। जन्म से ही वह समाज के सहारे रहता है। यदि समाज से उसे अलग कर दिया जाय, तो जिन्दा नहीं रह सकता, मर जायगा। समाज का लालन-पालन और प्रेम बच्चे को न मिले, तो वह खतम ही हो जाय। परिवार भी तो आखिर समाज का ही एक अंग है। पग-पग पर उसे दूसरों की सहायता चाहिए। बच्चा भाषा सीखता है, वह भी समाज से ही सीखता है। समाज से अलग हो जाय, तो उसकी कोई भाषा ही नहीं होगी। दूसरे-दूसरे जानवरों की जन्मजात बोलियाँ होती है। इसलिए इग्लैण्ड का गधा अंग्रेजी और गढ़वाल का गधा गढ़वाली भाषा न बोलकर सर्वत्र अपनी गधई बोली ही बोलता है। मनुष्य की कोई जन्मजात भाषा नहीं होती।

अकेले रहकर मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। अकेला किसान खेती नहीं कर सकता। हल, बैल, कुदाल आदि साधन चाहिए।

साधन किसने बनाये ? बढ़ई और लोहार के सहयोग के बिना हल कैसे बनता ? लोहा है, कपड़ा है, सब चीजें समाज के सहयोग से ही प्राप्त होती हैं। स्कूल और कॉलेज में विद्याध्ययन करते हैं। स्कूल किसने बनाया, पुस्तकें किसने बनायीं ? शिक्षकों का सहयोग न होता, तो क्या होता ? न मालूम कितने लोगों के गूढ़ और गम्भीर अध्ययन के बाद पुस्तकें तैयार की गयीं, जिन्हें आज हम पढ़ते हैं। मनुष्य जो कुछ करता है, समाज से लेकर ही करता है, अकेला नहीं। हम समाज के ऋणी हैं।

समाज में हम रात-दिन रहते हैं, किन्तु केवल अपने लिए यह एक बड़ा अन्तर्विरोध है। समाज से लिया है, तो समाज को देना भी है, यह समझना होगा। महात्मा गांधी ने कहा, आप केवल ट्रस्टी हों, मालिक नहीं। यही सर्वोदय की बुनियाद है। विनोबाजी भूदान के द्वारा यही समझा रहे हैं। भूमि का मालिक भगवान् है। उस पर सबका बराबर हक है। सब मिलकर पैदा करो और बाँटकर खाओ। महाभारत में पाँच पांडव थे। पाँच गाँव माँगते थे। पाँच गाँव की बात भी ठीक नहीं थी। उसके लिए जो कुछ हुआ, उसे भूल जाओ। जमीन समाज की है, गाँव की है। धर्म यही कहता है, आप जमीन गाँव को दे डालो। मालकियत का विचार सब दुःखों का मूल है। आपके पास जितनी सम्पत्ति है, आप जो कमाते हो, वह आपका नहीं है, वह भी समाज का है। सम्पत्तिदान के पीछे यही विचार है। आज तो गरीब, अमीर, सब कोई स्वार्थ की घुड़दौड़ में लगे हैं। सारा समाज दोषी है। नाना प्रकार के झगड़े और सर्वनाश का खतरा सामने है। जिन दिनों विज्ञान की

उन्नति नहीं हुई थी, बिजली, कोयले और पेट्रोल की शक्ति नहीं थी, परमाणु की शक्ति का शोध नहीं हुआ था, उत्पादन सीमित था, उस समय भय रहता था। मनुष्य संग्रह करके रखता था। उस समय मनुष्य की स्वार्थ-भावना का 'कारण' हो सकता था। किन्तु आज तो अणु-शक्ति के शोध के द्वारा विज्ञान ने ऐसी सम्भावनाएँ पैदा कर दी है कि कोई भी मनुष्य भूखा नहीं रहेगा, नंगा नहीं रह सकेगा। उस विज्ञान का उपयोग हम नाश के लिए भी कर सकते है और निर्माण के लिए भी। निर्माण के लिए उसका उपयोग करेंगे, तो हर कोई लखपति नहीं बन सकता। लखपति बनने की आवश्यकता भी नहीं है। धन-सग्रह मानव-जीवन की सार्थकता नहीं है। मानव-जीवन का ध्येय है आत्म-दर्शन, हृदय-शुद्धि, लोक-सेवा और लोक-संग्रह। धन-संग्रह से मानव मानव नहीं रहता। मनुष्य का जीवन चलाने के लिए उसकी बुनियादी आवश्यकताएँ है, अन्न-वस्त्रादि। इन आवश्यकताओं को पूर्ण करना मनुष्य का जीवन-सिद्ध अधिकार है। मनुष्य स्वार्थी बन गया है। इसलिए समाज की बुनियादी जरूरतों की पूर्ति नहीं हो पाती। करोड़ों की सम्पत्ति का संग्रह करके मनुष्य रखता है, किन्तु जब जाता है, तो क्या लेकर जाता है? कुछ नहीं। खाली हाथ ही जाता है। इसलिए हम समझें, हम सब ही भाई-भाई हैं, हमारा बन्धु-परिवार है, विश्व-परिवार है, ढाई अरब का मानव-परिवार है। हम सबकी सेवा करें, पूरे समाज की सेवा करें, समाज हमारी जरूरत को हमें दे, यह विचार समझ लें, तो सर्वोदय हो जायगा।

सर्वोदय का यह विचार पूरी मानव-जाति के लिए और पूरे

विश्व के लिए है। इस पर अमल एक जगह से ही शुरू होगा। भारत-भूमि को इस प्रयोग के लिए चुना गया है। भूदान के द्वारा आज सारे भारतवर्ष में इसी विचार का प्रयोग हो रहा है। धरती सबकी है। भारत में यह हो रहा है, इसलिए भारतीयों का है, ऐसा कहते है। हम लोगों की आँखें न खुलें, हमें उस मार्ग का पता न हो, यह अत्यन्त दुःख और चिन्ता की बात है।

भूदान का संदेश है, मानव-जीवन में जो नाना प्रकार के कष्ट और दुःख चल रहे हैं, उनका नाश हो, मन-शुद्धि हो, लोभ और भय, जो आज समाज में व्याप्त हो रहे हैं, नष्ट हो जायँ। स्वार्थ की लड़ाई का क्या नतीजा होता है, स्पष्ट हो गया है। स्वार्थ की लड़ाई में सबकी जीत नहीं हो सकती, सबका स्वार्थ नहीं सिद्ध हो सकता। ३७ करोड़ भारतीय स्वार्थ की लड़ाई लड़ें, १० जीतें, ९० हारें, यानी १० सुखी, ९० दुःखी। गढ़वाल में ही नहीं, सर्वत्र दुःख का सागर है। सुख के तो कहीं छोटे-छोटे टापू हैं। लड़ाई में धर्म क्या है और अधर्म क्या है, यह भी भूल गये। जो बाप-दादों ने भी कभी नहीं किया, वह हम कर रहे है। रिश्वत का बाजार खूब गर्म है, जुर्म रोज बढ़ रहे हैं। नैतिक पतन कितना हुआ है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लड़ना, बस, उसके आगे हमारी मानवता जाती ही नहीं, हमारी संवेदना बढ़ती नहीं। जब तक ये लड़ाइयाँ चलती रहेंगी, भ्रष्टाचार चलता रहेगा, चोरी और रिश्वत चलते रहेंगे। जो युद्ध होता है उसकी जड़ में यही स्वार्थ होता है। गिरोह बनते है, दल खड़े होते है, राष्ट्रों के नाम पर संघर्ष होते है।

अब अहिंसा-धर्म के अनुकूल परिस्थिति हुई है। गत

महायुद्ध में एक करोड़ व्यक्ति मारे गये, फिर भी अभी सारी दुनिया में कई अरब आदमी बाकी है। अब यदि विश्वयुद्ध होता है, तो इस लड़ाई में प्रलय ही होगा, सर्वनाश ही होगा। कोई भी मनुष्य बचेगा नहीं। यदि कोई किसी कन्दरा में छिपा-छिपाया बच भी गया, तो उसके शरीर में भयानक फोड़े हो जायँगे। इस युद्ध में लड़नेवालों का नही हीं, न लड़नेवालों का भी नाश होगा। दुनिया के विचारक आज इसीलिए दुनिया की ओर देख रहे हैं।

विज्ञान ने कहाँ पहुँचा दिया है! दुनिया के पास वैभव की सामग्री तो सब है। दुनिया भारत से आत्मज्ञान चाहती है। भय से त्राण और उद्धार का रास्ता चाहती है। भारत में यह विचार पैदा हुआ है। विचार पुराना ही है, नये रूप में आया है। विश्व में जो तत्त्व है, नित्य हैं, उनमें परिवर्तन नहीं होता, एक ही है, फिर भी नया-नया स्वरूप सामने आता है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न उसके स्वरूप प्रकट होते है। भूदान का संदेश सर्वोदय का संदेश है। दुनिया जिन आपत्तियों में घिरी हुई है, उनसे उसे उबारने का सदेश है। आज शान्ति की खोज तो हो रही है, किन्तु उस दृष्टि में गहराई नहीं है। ऊपर-ऊपर का प्रयास है। शान्ति-प्रेमी बड़े राष्ट्र अमेरिका, रूस, इंग्लैंड, चीन, भारत इत्यादि में समझौता हो जाय, अब युद्ध नहीं होगा। सारे देश सेना घटाने का संकल्प करें, निरस्त्रीकरण की बात सोचें। निरस्त्रीकरण पर जब तक अमल नही होता, समझौता पूरा नहीं हो सकता। युद्ध नहीं रुक सकता। रूस ने सेना में कटौती की घोषणा की। जानकर लोग कहते हैं, इसमें धोखा है। लड़ाई के हथियार ही ऐसे बने है, जिनके चलाने में मनुष्य की जरूरत नहीं

है। सेना में लोग थोड़े हैं, हथियार बहुत हैं। ऐसे अस्त्रों का प्रयोग हुआ, तो मानवमात्र मिट जायगा। कौन बचेगा ? पशु-पक्षी रहेंगे, जाह्नवी रहेगी, नहीं कह सकते। इतने जहरीले प्रयोग है ये सब ! मनुष्य और पशुओं का सैकड़ों मीलों तक प्राणान्त हो जाता है। समुद्रों और मछलियों पर भी असर होता है। रेडियो एक्टिव धूल के कारण मछलियों के मांस में जहर पहुँच गया है। एक ऐसे ही स्थान से मछलियाँ पकड़ी गयीं, बाजार में बिकीं, जिन लोगों ने खाया, उन्हें रोग हो गया। विज्ञान ने नर-संहार, प्रलय के साधन तैयार कर दिये हैं। चारों ओर भय फैला हुआ है। अब कैसे बचेंगे ? मनुष्य ने मूर्खता से अपने सर्वनाश के साधन पैदा कर लिये है। अब भय खाता हैं। भस्मासुर पैदा करके अब व्याकुल होकर शान्ति-मार्ग ढूँढ़ रहा है।

हमारे देश में जीवन-तत्त्व की गहरी खोज करके अहिंसा के विचार पर पहुँचे हैं। लाखों-करोड़ों ने इस मार्ग को अपनाया है। मनुष्य मनुष्य की हिंसा न करे, इतना ही नहीं, पशु-पक्षी की भी हिंसा न करे। निर्वैरता का यह उदात्त विचार भारत में ही प्रकट हुआ है। भारत में ही सम्राट् अशोक हुए, जिन्होंने विजय प्राप्त करने के बाद तलवार न उठाने का संकल्प किया। भारत से ही शांति के दूत दुनिया के कोने-कोने में गये है। भारत-भूमि पवित्र है। यहाँ से दुनिया को अहिंसा का मार्ग-दर्शन मिलना चाहिए।

गुप्तकाशी
२४-६-'५६

गढ़वाल में कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि भूदान-आन्दोलन

का उद्देश्य सवर्णों से भूमि लेकर हरिजनों को देना है, यह एक हरिजन-आन्दोलन है। दरअसल अधिकतर हरिजन ही खेतिहर मजदूर हैं, इसलिए भूमि के बँटवारे में उन्हींको ज्यादातर भूमि मिलती है। उन्हें जमीन दी गयी है जरूर, लेकिन लाठी के बल पर नहीं, करुणा, क्षमा और सद्भावना पैदा करके गाँव के सम्मति से दी गयी है। अगर केवल हरिजनों के लिए ही विनोबाजी ने आन्दोलन किया होता, तो वह भी विनोबाजी का एक बहुत बड़ा काम हुआ होता। महात्मा गांधी ने हरिजनों के लिए ही एक यात्रा की थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और हरिजन, सबमें एक ही आत्मा है। शरीर असली चीज नहीं है। वह नाशवान् है। इस कुल में पैदा हुआ या उस कुल में, इस तरह सोचना धर्म की दृष्टि नहीं है। यह अधर्म है। इस जातिभेद के कारण ही भारत की ऐसी दशा हुई है।

सारी दुनिया को यहीं से ज्ञान मिला है। फिर इस देश का इतना पतन क्यों ? जो आया, कब्जा करके बैठ गया। क्यों ? इसलिए कि हिन्दुओं में भेद है। जातिभेद के कारण ही देश का इतना पतन हुआ है। इस देश में ६ करोड़ हरिजन हैं। अब तक बराबर उन्हें हर तरह दबाकर रखा गया है। इसलिए उनकी सारी शक्ति खतम हो गयी। आपकी इस गुप्तकाशी में भी, श्री केदारनाथ में भी, मंदिर में हरिजन-प्रवेश न हो, इसी बात पर मारपीट हुई है। मुकदमा दायर किया गया है, मगर आजकल की अदालतों में आम तौर पर अन्याय ही होता है। आपका यह काम धर्म-विरुद्ध तो हुआ ही, राष्ट्र-विरुद्ध भी हुआ। आप भारत के नागरिक हैं। भारत का अपना एक विधान है।

उस विधान के विरुद्ध आपका यह काम हुआ है। आपके इस काम में न तो मानव-धर्म का खयाल है और न राष्ट्र के नियमों का ही पालन हुआ है।

कर्म से किसीका ऊँचा-नीचा होना तो समझ में आता है, किन्तु एक दुराचारी, मिथ्याचारी, पाखण्डी केवल ऊँचे कुल में जन्म लेने के कारण मान चाहे, तो यह स्वयं में एक व्यभिचार है। दुनिया में जन्म से कोई ऊँच-नीच नहीं होता। मनुष्य पर समाज का प्रभाव पड़ता है। पूर्वजन्म के संस्कार भी मिट सकते हैं। भूदान का मूलतत्त्व है, इस भेदासुर का अन्त करना। वेदान्त की पुकार भी अद्वैत की है। इसलिए मैं कहता हूँ कि मैं श्री केदारनाथ के मन्दिर में नहीं जाऊँगा। जहाँ हरिजन भाई नहीं जा सकते, वहाँ मै नहीं जाऊँगा। आप सब इसके भागीदार होंगे। हमने वेदान्त का उच्चार किया, किन्तु उस पर आचरण नहीं किया। वहाँ किसी प्रकार के भेदभाव को कोई स्थान नहीं है।

आपके इस हिमालय में बहुत-से तपस्वी हैं, जिनको सत्य का दर्शन हुआ है, आत्म और ब्रह्म का दर्शन हुआ है। भक्ति-मार्गी हो अथवा ज्ञानमार्गी, सबने यही कहा है कि मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नहीं है। सब एक ही परमात्मा के स्वरूप हैं। लेकिन कहने से क्या होगा? हमें समाज में जाकर देखना होगा कि यह भेद मिटे कैसे। मानव-बन्धुत्व का विचार हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सब मानते है। इस विचार पर अमल कैसे हो, यही आज की बड़ी समस्या है।

आज समाज के आर्थिक क्षेत्र हों या धार्मिक, सब जगह भेद फैले हुए हैं। बड़ी मछली छोटी मछली को निगल रही है। अब

समता का युग है। दुनिया बहुत छोटी हो गयी है। सबको मिल-कर रहना होगा। भेद के मूल कारण शोषण और उत्पीड़न है। ज़ब तक समाज में शोषण और पर-पीड़न चलता रहेगा, भेदभाव नहीं मिट सकता।

तत्त्वतः हम सब मानते है, हम एक हैं, कोई भेदभाव हममें नहीं है। प्रत्यक्ष रूप से एक कैसे होंगे, इस भेद की जगह अभेद कैसे होगा, आर्थिक, सामाजिक इत्यादि सभी क्षेत्रों से इस भेद-भाव का अभिशाप कैसे मिटेगा, इस समस्या को हल करने के लिए ही विनोबाजी ने भूदान-आन्दोलन शुरू किया है। जीवन के हर पहलू से, हर क्षेत्र से भेदभाव को निकालना है। आज समाज में कितने लोग सुखी है ? अपने गाँव में ही देखिये, कौन सुखी है। एक भी सुखी नहीं है। पचासी प्रतिशत लोग देहातों में रहते है या तो मजदूरी करते है। पन्द्रह प्रतिशत लोग ऐसे हैं, जिनके हाथ में कुछ उद्योग हैं। कुछ धनिक लोग बड़े शहरों में रहते हैं, जिनको कह सकते है कि सुखी हैं। किन्तु ऐसे लोग है कितने ? अँगुलियों पर गिने जा सकते हैं। यह सब भेद मिटना ही चाहिए। हरिजन और सवर्ण का भेद मिटाना इस भेदासुर-संग्राम की पहली लड़ाई है।

श्री केदारनाथ
२८-९-'५६

देश में कई सत्तानिष्ठ दल हैं और मैं भी एक ऐसे ही सत्ता-निष्ठ दल में था और किन्हीं कारणों से आज भी मेरा, कुछ हद तक, उस दल से सम्बन्ध है। हाँ, वह सम्बन्ध अब इसलिए

नहीं है कि सत्तानिष्ठ राजनीति में मेरा विश्वास नहीं है। और इसलिए यह सम्बन्ध भी अब आगे नहीं चल सकता।

महात्मा गांधी आध्यात्मिक पुरुष ही थे, किन्तु गुलामों का कोई धर्म नहीं होता, इसलिए गुलामी दूर करके वे देश का नव-निर्माण करना चाहते थे और इसीलिए परिस्थितिवश उन्हें राजनीति में आना पड़ा। गांधीजी का विश्वास था कि सत्ता के द्वारा देश का निर्माण नहीं हो सकता। जाहिर है कि सत्ता के द्वारा निर्माण का काम होना सम्भव होता, तो स्वराज्य-प्राप्ति के बाद देश के प्रथम प्रधान मंत्री स्वयं महात्मा गांधी ही बने होते। अमेरिका और रूस में क्रान्तियाँ हुई और क्रान्तियों के बाद उनके नेता जार्ज वाशिंगटन और लेनिन ने सत्ताएँ सँभालीं। किन्तु महात्मा गांधी ने स्वयं सत्ता नहीं ली। इतना ही नहीं, वे यह भी चाहते थे कि सत्ता चलाने का भार दूसरों पर सौंपकर कांग्रेस की पूरी संस्था ही लोक-सेवक-संघ के रूप में बदल जाय। गांधीजी का दृढ़ विश्वास था कि देश के नव-निर्माण का कार्य सेवा के मार्ग से ही हो सकता है, सत्ता के मार्ग से नहीं। इसलिए मैंने सत्ता का मार्ग छोड़कर सेवा का मार्ग ही अपने लिए चुना है।

केदारनाथ हिन्दुओं का तीर्थ-स्थान है। धर्म-भावना से ही हर साल लाखों आदमी दर्शन के लिए यहाँ आते हैं। हरिजन और सवर्ण के भेदभाव यहाँ टिके हुए हैं। ऐसा नहीं चाहिए। यह धर्मविरुद्ध है। भगवान् सबमें हैं, सब जगह हैं। जो भगवान् इस मन्दिर में है, वही कण-कण में हैं। वही गरीब, अमीर, सवर्ण, हरिजन सबके दिल में है। ऐसा समझनेवाला ही ईश-दर्शन का अधिकारी है। पेट भरे हुए लोगों को खिलाया जाय

और पास ही भूखे पड़े हुए मनुष्य को उसके माँगने पर भी खाने को न दिया, तो मैं उसे धर्म नहीं मानता। वह अन्याय है, अधर्म है। जिस धर्म का व्यावहारिक जीवन से कोई सम्बन्ध न हो, जो धर्म जीवन को उठाने में मदद नहीं करता, वह धर्म नहीं, अधर्म है। वह टिक नहीं सकता। दया और समता धर्म का रूप है।

देवघर भी एक प्रसिद्ध धाम है। वहाँ भी शिवजी की मूर्ति है। विनोबाजी को वहाँ आने का निमंत्रण दिया गया। जब विनोबाजी मंदिर में पहुँचे, तो पण्डे-पुजारियों ने उन्हें घेर लिया। धक्कमधुक्की शुरू हुई। विनोबाजी पर प्रहार किया गया। उनके साथियों ने चारों ओर घेरा डाल लिया था, इसलिए विनोबाजी को तो चोट लगी नहीं, किन्तु उनकी रक्षा में लगी हुई लड़कियों को खूब चोट आयी। क्या यह धर्म है ?

आपका देश बुद्ध का देश है, शंकराचार्य का देश है, महात्मा गांधी का देश है। इन महान् आत्माओं ने देश को ऊँचा उठाया है। महात्मा गाधी को हम सब जानते है। वे एक उच्च कोटि के महात्मा थे। अपने देश में अंग्रेजों का राज्य था। अंग्रेजी राज्य से मुक्त कराने के लिए उन्होंने लड़ाइयाँ लड़ीं। किन्तु कैसे विचित्र पुरुष थे वे कि उन्होंने अंग्रेजों की हत्या नहीं की। अपने मन में भी उन्होंने कभी अंग्रेजों से द्वेष नहीं रखा। वे उन्हें बराबर प्यार ही करते रहे। आज हमारे देश को और दुनिया को ऐसे ही धर्म की जरूरत है, जिसमें मानव मानव से प्रेम करे। महात्मा गांधी के बाद विनोबाजी आज उसी धर्म का, मानव-धर्म का प्रचार कर रहे है। विनोबाजी एक उच्च कुल के

महाराष्ट्रीय ब्राह्मण हैं। वे वेद, उपनिषद् आदि समस्त शास्त्रों के उदात्त धर्म को जाननेवाले प्रकाण्ड विद्वान् और साधक हैं। उनको न कोई बाल-बच्चा है, न कोई घर-द्वार। वे केवल इसी धर्म-विचार को सुनाते हुए घूम रहे हैं। भूदान एक धर्म-विचार ही है। भूदान के इस धर्म-संदेश को फैलाने के लिए मैं यहाँ आया हूँ।

दुनिया में हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध और ईसाई, ये चार बड़े धर्म आज माने जाते हैं। बड़े इसलिए कि दुनिया में करोड़ों लोग इस धर्म को मानते हैं। और भी अनेक छोटे-छोटे धर्म हैं। इस देश में और दूसरे देशों में भी इन धर्मों को लेकर कितने ही संघर्ष हुए हैं। चारों ओर धर्म-धर्म की ही आवाजें सुनाई पड़ती हैं। किन्तु फिर भी मनुष्य का पतन ही हो रहा है। समाज ऊँचा नहीं उठ रहा है। क्यों? इसलिए कि धर्म का व्यावहारिक जीवन से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है। वेदान्त कहता है, सबमें एक ही आत्मा है। किन्तु फिर भी जैसे धन-दौलत ने बड़े-छोटे के भेद बना दिये है, उसी तरह धर्म ने भी छोटे-बड़े के भेद पैदा कर दिये है। इन्हीं भेदों के कारण युद्ध होते हैं।

इस युद्ध-परम्परा का अन्तिम परिणाम क्या होगा? महाभारत के पहले और बाद में भी युद्ध हुए, किन्तु इन युद्धों में कुछ लोग बच जाते थे और दुनिया चलती रहती थी। अब तो विज्ञान ने हाइड्रोजन बम मनुष्य के हाथ में दे दिया है। एक बम गिरता है, तो सैकड़ों मील तक बरबादी कर देता है। फिर उससे जो जहरीले तत्त्व निकलते हैं, वे सारे वायुमण्डल को विषाक्त (Radio active) कर देते हैं, जिसके कारण साँस लेने से ही लोग मर

जाते हैं, अथवा कुछ ऐसे भयानक विष उनके अन्दर प्रवेश कर जाते है कि सारे शरीर में बड़े-बड़े फोड़े हो जाते है, जो कभी अच्छे नहीं होते। तो यदि अब युद्ध होगा, तो संसार में प्रलय ही हो जायगा, एक भी मनुष्य जिन्दा नहीं बचेगा। कुछ साँप, बिच्छू, बन्दर, भालू बच जायँ, तो भले ही बच जायँ। आज मनुष्य मनुष्य का खून चूस रहा है। मनुष्य मनुष्य का शोषण कर रहा है। मनुष्य ही मनुष्य की पीड़ाओं का सबसे बड़ा कारण बना हुआ है। यदि मनुष्य ऐसा ही रहनेवाला है, तो इससे तो कहीं अच्छा होगा कि बम गिरे, प्रलय हो जाय और एक भी आदमी जिन्दा न रहे।

जरा सोचिये तो कि जब मनुष्य ही नहीं रहेगा, तो आपके इस मंदिर में कौन आयेगा? आप सारे लोग धर्म को जाननेवाले है, विद्वान् है। आप लोग सोचें, विचार करें और कोई ऐसा रास्ता निकालें, ऐसा धर्म बनायें, जिससे लोग एक-दूसरे को प्यार करें, एक-दूसरे की सेवा करें और एक-दूसरे को बाँटकर खायें। अमेरिका और दूसरे मुल्कों से कहें कि आओ, हमारे पास जो कुछ है, वह सबका है। आपको भी सोचना चाहिए कि आप लोगों के पास जो कुछ है, वह आपका नहीं है, सबका है, पूरे समाज का है या फिर इन केदारनाथ भगवान् का है।

आज हमारा हृदय संकुचित हो गया है। अपने बाल-बच्चों और परिवार की सीमा में ही हमने अपने को बाँध लिया है। हमें रोटी मिलती रहे, बस, इतने से ही हमारा मतलब है। हमारा पड़ोसी भूखा मर रहा है, तो वह जाने। गरीब हो या अमीर, सवर्ण हो या हरिजन, सब स्वार्थ में डूबे हुए हैं। सबको अपने-

अपने स्वार्थ सिद्ध करने की पड़ी हुई है। इसलिए सारे झगड़े और सारे भेद आ खड़े होते हैं। हम सोचते नहीं है कि हमारे पास जो कुछ है, वह सब समाज की मदद से मिला है। जंगल में कुछ प्राणी ऐसे होते होंगे, जो जन्म लेते ही अपने समाज से अलग हो जाते हों और फिर भी जिन्दा रहते हों। मनुष्य तो जन्म से लेकर मृत्यु तक समाज के सहारे रहता है। उसको जो भाषा मिली है, वह तक तो समाज के बदौलत मिली है। यदि समाज न होता, तो मनुष्य की कोई भाषा ही न होती। हमारे पास जो कुछ भी है, जमीन, धन, विद्या, शरीर-बल इत्यादि, वह सब समाज की ही सहायता से हमें मिला है। इसलिए हमारे पास जो कुछ भी है, वह सबका है। इसलिए सब मिलकर उसका उपयोग करें, यही सच्चा धर्म है, यही सच्चा दर्शन है और यही सच्चा वेदान्त है।

श्रीनगर
२०-१०-'५६

भूदान का जो यह विचार है, वह केवल आज की समस्याओं का हल नहीं। ये समस्याएँ तो हल होंगी ही। जैसे हम अपने धर्म का पालन नहीं करते, तभी तो धर्मोपदेश की जरूरत पड़ती है। हम धर्म और जीवन का सम्बन्ध भूल गये। मंदिर में, पूजापाठ में तो भगवान् का नाम लेते ही हैं; लेकिन जीवन से उस भगवद्-भावना से कुछ सम्बन्ध ही नहीं। इस देश में कई धर्म है। सब अपने-अपने धर्म का पालन कर रहे हैं। फिर भी यह अन्याय, विषमता, उत्पीड़न कहाँ से आया? पत्थर को पूजते हैं, भोग चढाते है, पर चेतन मानव, जो भगवान का ही स्वरूप है, भूखा

मर रहा है। यह बतलाता है कि हमारा जीवन का आधार धर्म पर नहीं है। इसलिए भूदान का जो यह विचार है, वह बतलाता है कि आज के व्यक्तिगत जीवन में सुधार हो। आज हम अपने लिए जिन्दा रहते है। हरएक अपनी तरफ खींच रहा है। यह मेरा, यह तेरा, इस झगड़े में निरन्तर उलझे रहते है, फिर भी कहते है कि सबमें परमात्मा है, सबमें उसीकी सृष्टि है। यह अन्तर्विरोध है। हरएक अपना ही सोच रहा है। एक कोई सरकारी नौकरी का स्थान खाली होता है, तो सैकड़ों प्रार्थना-पत्र पहुँच जाते है। हरएक अपनी ही दिखाने की कोशिश करता है। लड़ाई चलती है, खींचातानी होती है। इस तरह अपना-अपना स्वार्थ सोचते-सोचते हममें संकीर्णता आ गयी है। हरएक अपने ही बाल-बच्चों का ध्यान रखता है। पड़ोसी की, गरीब की, दुःखी और बीमार की कोई चिन्ता नहीं करता। यह जो स्वार्थ-सिद्धि के लिए संघर्ष चल रहा है, वही हमारे पतन का कारण है। आज के समाज की व्यवस्था ही इतनी गलत है कि मालूम नहीं पड़ता कि यह मुल्क कहाँ जायगा ? इसका नतीजा अगर यह भी होता कि सबके स्वार्थ सध जायँ, तो भी अच्छा होता। लेकिन वह भी नहीं होता। चारों तरफ कलह है, दुःख है, लड़ाई और वैमनस्य है। अब देखिये, दो लड़ाइयाँ हम लड़ चुके। अब तीसरे विश्व-युद्ध की तैयारी हो रही है। रूस और अमेरिका का क्या सम्बन्ध है ? दोनों ही देश एक-दूसरे से बहुत दूर है, खाने-पीने की कोई कमी नहीं, फिर भी निरन्तर सघर्ष है और इस संघर्ष के साधन अब हाइड्रोजन बम बन गये है। ये हाइड्रोजन बम तो बहुत ही खतरनाक साधन है। हिरोशिमा, नागासाकी में 'एटम बम' गिरा, तो लाखों लोगों पर उसका असर

हुआ। कहते हैं कि हाइड्रोजन बम की तो उससे ढाई हजार गुना शक्ति है। पहली लड़ाई में बहुत नुकसान हुआ। एक करोड़ लोग या तो मरे या तो जख्मी हुए। फिर भी सवा दो अरब लोग आज हैं। लेकिन यह लड़ाई हुई, तो मानव-जाति का लोप हो जायगा। कोई हिमालय की कन्दरा में साधु-महात्मा बच जाय, तो मुझे पता नहीं।

अब परिस्थिति यह है कि मानव भी रहे और लड़ता भी रहे, यह हो नहीं सकता। दोनों में से एक चीज का खातमा होकर रहेगा। या तो लड़ाई खतम हो या मानव मिट जाय। यह जो लड़ाई होती है, एक-दूसरे के साथ संघर्ष होता है, उसमें थोड़े लोग जीतते हैं, बाकी सबकी हार होती है। आज सारे देश में दस प्रतिशत सुखी है, बाकी नव्वे प्रतिशत दुःखी। ये जो दस सुखी हैं, मैं कहता हूँ, उनके भी जीवन की जो आवश्यकताएँ हैं, वे कभी पूरी नहीं हो पातीं। हर आदमी संघर्ष कर रहा है। सारा समाज ही टूट गया है। यह गम्भीरता से सोचने का विषय है। अब कहते हैं कि हमारी सरकार तो निष्पक्ष है। हम न रूस के गुट में शामिल होंगे, न अमेरिका के। आज जो दुनिया की परिस्थिति है, उस पर से मेरी राय में यह भ्रम है। आज दुनिया में लड़ाई छिड़ जाय और हम बचे रहें, यह हो नहीं सकता। एटमिक लड़ाई में कोई देश अलग नहीं रह सकता। हम एक असाधारण जमाने में रहते है, इसलिए हमें सोचना चाहिए कि हम क्या करें। इस जमाने की सबसे कीमती चीज विश्व-शक्ति है। आज ये लोग बम बनाते है, फिर शान्ति-परिषदें करते हैं। आपस में चर्चा करते हैं और फिर जाहिर करते है कि

अब तो युद्ध का खतरा टल रहा है, लेकिन फिर वही हालत होती है। अच्छा, मान लीजिये कि एक दिन समझौता हो जाय कि हम युद्ध नहीं करेंगे। हमारे नेताओं ने संकल्प किया और संधि-पत्र पर दस्तखत कर दिये और इससे हम समझ लें कि अब जान बच गयी। इधर स्वार्थ की लड़ाई चालू हो, तो यह समझना कि लड़ाई का खतरा टल गया, मूर्खता होगी। अवसर आने पर ये संधि-पत्र फाड़कर फेंके जायँगे। युद्ध का कारण तो स्वार्थ है। इस स्वार्थ के बल पर ही युद्ध का वातावरण कायम रहता है। हम क्रान्ति की बात करते है। रूस में चालीस वर्ष से क्रान्ति हुई, फिर भी वहाँ शाति नहीं, सुख नहीं। कहते हैं, वहाँ गरीबो का राज्य है, तो वहाँ सुख होना चाहिए। लेकिन वहाँ भी वही विषमता, वही स्वार्थ की लड़ाई, वही गुलामी है। थोड़े दिन पहले रूस के उप-प्रधानमंत्री मिकोयेन साहब अपने देश में आये थे। वे खुद कहते थे कि हमारे देश में एक और चालीस का फर्क है। यानी अगर मजदूर को एक रुपया मिलता है, तो व्यवस्थापक को चालीस रुपये मिलते हैं। हम तो सुनते है, वहाँ एक और अस्सी का फर्क है। खैर ! जो भी हो, लेकीन चालीस वर्षों के बाद भी वहाँ समानता नहीं आयी। मारकाट भी कम नहीं चल रही है। अन्याय है, द्वेष है, अशांति है, भय है। स्टालिन साहब ने क्या नहीं किया ? जो कल उनका साथी था, उनके बगल में बैठता था, आज स्वार्थवश, अविश्वास के कारण वह गोली के घाट उतारा गया। कोई स्वतन्त्रता नहीं, कोई सुरक्षा नहीं। आज के लोग भी वैसा ही कर रहे हैं।

आज जगत् का जो बाह्य रूप है; उसमें मानवीय क्रांति

(Human Revolution) और सामाजिक क्रांति की जरूरत है। समाज की जड़ व्यक्ति है। मानव को बदलना है। मानव सामाजिक जीव है (Man is a social being)। बच्चा समाज में ही पैदा होता है। तो उसका समाज पर ही आधार होता है। जानवर तो जन्म के बाद स्वतन्त्र हो जाते हैं, लेकिन मानव का आधार समाज पर रहता है। उसका पालन-पोषण, उसको भाषा सिखाना, यह सब समाज के सहयोग से होता है। पशु की भाषा जन्मजात होती है। उसके कण्ठ की ही वैसी आवाज होती है। अब कोई गधा हिन्दुस्तान में जनमा हो, उसको इंग्लैण्ड में भेजा जाय, तो वहाँ उसके कण्ठ की आवाज नहीं बदल जायगी। लेकिन मनुष्य का बच्चा तो वायुमण्डल के अनुसार भाषा सीख लेता है। समाज में रहकर ही मनुष्य ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, सब सीखता है। अगर उसको किसी जंगल में रखा जाय, तो वह क्या सीखेगा ? मानव बना समाज के सहयोग से। यह हमारी बुद्धि, हमारी सभ्यता, साहित्य, ये सब समाज के सहयोग के बिना हो नहीं सकते। मजदूर भी समाज के ही सहयोग से कमाता है। मालिक भी समाज के सहयोग से ही अपनी मालकियत टिका सकता है। फर्ज कीजिये कि किसी पूँजीपति को पहाड़ पर बिठाया जाय, उसको एक करोड़ रुपया दिया जाय। उसको कहा जाय कि आप अपनी बुद्धि चलाइये, अपना पुरुषार्थ दिखाइये, अपनी योजना बनाइये और पैसा पैदा करिये। शर्त यह कि किसी मानव से आपकी मुलाकात न होगी। वह पचास बरस के बाद भी एक कौड़ी पैदा नहीं कर सकेगा। वहाँ के पशु-पक्षियों से, पेड़-पौधों से जितना उसको प्रेम करना हो, करे; किन्तु पूँजी कहाँ से बढ़ायेगा ?

अगर वहाँ से एक बोझा लकड़ी काटकर लाये, तो वह भी आठ आने में कोई मनुष्य खरीदेगा, तभी तो आठ आने उसको मिलेंगे। तो यह आदान-प्रदान द्वारा ही धन कमाया जाता है। यह हमने पैदा किया, ऐसा जो विचार है, वह मिथ्या अहंकार है। कोई अकेला व्यक्ति पैदा ही नहीं कर सकता। उसको सैकड़ों लोगों का सहयोग लेना पड़ता है। हमारा जीना भी समाज के सहयोग से ही होता है। हम सब समाज के ऋणी हैं। इसलिए जो कुछ हमारे पास है, वह सब समाज को अर्पण करें। जो कुछ हमारे पास है, वह समाज को दे दें और समाज जो दे, उसका उपयोग करें। यह सामाजिक धर्म है। इसका पालन करें। यही सर्वोदय का विचार है।

गांधीजी सत्य-अहिंसा से अंग्रेजों से लड़े, तो नमक से शुरुआत की। लोग हजारों-लाखों की संख्या में गांधीजी के आवाहन पर नमक-सत्याग्रह में शामिल हुए, तो हुकूमत हिल गयी। गांधीजी ने नैतिक आधार पर समूह का परिवर्तन किया। यही तो हम रोज संतों का उपदेश सुन रहे हैं। यह जो संत विनोबा का भूदान, सम्पत्तिदान आदि-आदि विचार है, वह भी नैतिक मूल्यों का आरोहण है। समाज में धर्म-भावना बढ़े, हम एक-दूसरे के साथ प्रेम के साथ रहें, सहयोग से रहें, न्याय से बरतें, यही इस आन्दोलन का मुख्य मकसद है। अगर हम इस तरह से आचरण करेंगे, तो निश्चय ही हमारा जीवन सुखी होगा।

पौड़ी
२०-१०-'५६

दुनिया का कल्याण सर्वोदय से है। यह नया विचार तो नहीं है, लेकिन इसका रूप नया है। अपने देश और दुनिया की

परिस्थिति आज क्या है ? हर जगह अन्याय, शोषण, स्वार्थ और उत्पीड़न का वातावरण है। गरीबी, बेकारी, बीमारी, झगड़े हर जगह की समस्याएँ हैं। देश में अन्दर और देश-देश का आपस में बाहर भी संघर्ष चल रहा है। उसका परिणाम जागतिक युद्ध में जाहिर होता है। आज ऐसी परिस्थिति हुई है कि इन युद्धों से मानव-समाज का खातमा हो जायगा। दुनिया में कई लड़ाइयाँ हुईं, महाभारत से लेकर आज तक हम लड़ाइयों का इतिहास सुनते हैं। पिछली हिटलर की लड़ाई में एक करोड़ 'कौजेलिटीज' हुईं, फिर भी आज सवा दो अरब जनसंख्या है। लेकिन आज सब कहते हैं कि अब युद्ध हुआ, तो मानव मिट जायगा। ऐसे भयानक हथियार बनाये है, जिसकी कल्पनामात्र से दुनिया के लोग घबड़ा गये हैं। और इसलिए दुनिया में विश्व-शान्ति की हर जगह माँग है। लेकिन यह हो कैसे ? कभी विचार किया है ? इस समस्या की जड़ में जाना चाहिए। इसकी गहराई में उतरना चाहिए। आजकल निरस्त्रीकरण की चर्चा चलती है। एटम बम, हाइड्रोजन बम को कैसे नियंत्रण में लाया जाय, इस सम्बन्ध में कितने ही सम्मेलन और परिषदें हुई हैं और हो रही हैं। किन्तु परिणाम कुछ भी नहीं आ रहा है। संधियों से जान बचेगी और मसला हल होगा, ऐसा माना जाता है। यह भ्रम ही है। मान लिया कि इन राष्ट्रों के प्रधानों ने, जैसे आइसनहावर, ख्रुश्चेव, नेहरू, इन लोगों ने युद्ध न करने का तय किया, तो क्या युद्ध बन्द हो जायगा ? क्या इन लोगों के निर्णय से विश्व-शान्ति हो जायगी ? यह कभी नहीं हो सकता। आखिर ये झगड़े होते क्यों हैं ? इस लड़ाई की बुनियादें कहाँ हैं, यह देखना चाहिए।

विनोवा ने कहा कि लोग कहते हैं, बमबाजी बन्द हो, लेकिन लाठी चलेगी। देश में गोली चलती रहे और बाहर के बमों को रोकने की कोशिश की जाय, यह कैसे होगा ? यह गलत चीज है। आपसी लड़ाई छोड़ते नहीं, तो बड़ी लड़ाई कैसे बन्द होगी ? केवल नेताओं के हस्ताक्षर से क्या लड़ाई बन्द हो जायगी ? अपनी दशा क्या है ? कुत्तों की तरह हम झगड़ रहे हैं। दस कुत्तों के बीच जब एक रोटी पर लड़ाई होती है, जो मजबूत होता है, वह लेकर भागता है और बाकी कमजोर मारे जाते हैं। बड़ी क्रान्ति हुई रूस में, चीन में, फ्रांस में। क्या हुआ उन क्रांतियों से ? क्या मनुष्य सुखी हुआ ? वहाँ आज भी मनुष्य के दुःख की कई समस्याएँ हैं। विनोवा आदमी बनने को कहते हैं। पशुता छोड़कर आदमी बनो। एक-दूसरे से लड़ना छोड़ दो।

आज विज्ञान की काफी प्रगति हुई है। अगर सब मिलकर रहें, तो सब सुखी हों। विज्ञान के कारण भौतिक उत्पादन बढ़ा है। कोई कारण नहीं कि आदमी भूखा रहे। पर गलत स्वार्थ के कारण कुछ विलास में जीवन व्यतीत करते हैं, तो कुछ भूखे मरते हैं। भगवान् ने मनुष्य को बुद्धि दी है। अगर मानव उसका सही उपयोग करे और सही माने में मानव बन जाय, तो कोई कारण नहीं कि वह भूखा मरे। लेकिन यहाँ तो निरन्तर संघर्ष ही चल रहा है। और उस संघर्ष की जड़ मनुष्य के हृदय में है और कभी-कभी वह युद्ध के रूप में जाहिर होती है। इसको बदलने की बात है। सबके हृदय में सबके लिए प्रेम हो, पूरा समाज एक हो जाय, एक-दूसरे को मदद करते रहें, आवश्यकता से अधिक संग्रह न करें, तो फिर देखो, मानव कैसा सुखी होता है। यही असली

क्रान्ति होगी। अन्तःशुद्धि हो, इस आधार पर जीवन खड़ा हो। आज का यह युग-धर्म है कि बाँटकर खाओ। अपने पड़ोसी के साथ मिलकर रहो। लेकिन आज हर कोई संग्रह ही करता रहता है। आपस में होड़-सी लग गयी है। मानव-मानव के बीच में होड़ है। देश-देश के बीच में होड़ है। चारों तरफ एक-दूसरे को गिरा-कर आगे बढ़ने की होड़ है। यह जो भूदान-यज्ञ का आन्दोलन है, वह इस होड़ को, इस स्वार्थ और संग्रह की भावना को मिटाने का आन्दोलन है। मानस का परिवर्तन करना है। जीवन का परिवर्तन करना है। वह अन्तःक्रान्ति से ही होगा। यह विचार समझाने के लिए, अमल में लाने के लिए यह भूदान-आन्दोलन है।

यह दान भीख माँगना नहीं है, यह तो विचार है। इस पर अमल करना है। लोग समझते है, दान यानी भीख। परन्तु विनोबाजी ने दान का अर्थ बतलाया है, 'दानं संविभाज्यः'। विनोबाजी तो संस्कृत के पंडित हैं। वे शब्दों के नये-नये अर्थ बतलाते हैं। गांधीजी शायद कोई दूसरा शब्द काम में लाते। इस दान का मतलब समान अधिकार है। हरएक अपनी आवश्यकतानुसार उपभोग करे और शक्ति के अनुसार काम करे। यह भूदान तो पहली सीढ़ी है। इसके बाद सम्पत्ति-दान, बुद्धि-दान, जीवन-दान आदि-आदि कई प्रक्रियाएँ आयी है। लोग पूछते है, क्या धनवान् लोग माँगने से दे देंगे? हम नहीं मानते। धनवान् दे देते हैं, तो हमें आश्चर्य लगता है। आखिर आज के समाज में कौन क्रान्ति चाहता है? धनवान् तो क्रान्ति नहीं चाहता। गरीब क्रांति चाहता है। इसलिए जो क्रांति चाहता है, उसे पहले अमल करना चाहिए। गरीबों को पहले बाँटना चाहिए। गरीबों के

मन में भी लोभ है। अपनी थोड़ी-सी पूँजी, मजदूरी के लिए भी उनके मन में मोह है, स्वार्थ है। जब गरीब बाँटेंगे, आपस में एक-दूसरे के साथ सहयोग करेंगे, प्रेम से मिलकर रहेंगे, तभी धनवान् को बाँटने के लिए कह सकेंगे। घर-घर से जब ऐसी आवाज निकलेगी कि हम बाँटकर खायेंगे, हम मिलकर रहेंगे, एक-दूसरे की सेवा करेंगे, तभी समाज-परिवर्तन होगा। कुछ लोग कहते हैं, हमने थोड़ी-सी जमीन दे दी। इससे क्या होगा? भाई, थोड़ी-थोड़ी देकर अपनी वृत्ति को बदलने की बात है। जब हजारों, लाखों, करोड़ों लोग अन्दर में प्रेम-भावना, दान-भावना रखकर देने लगेंगे, तो समाज में दान-वृत्ति बढ़ेगी, सहयोग-वृत्ति बढ़ेगी, प्रेम बढ़ेगा और सारा समाज सुखी होगा और दुनिया का वातावरण बदलेगा।

